© 2016 IJSRST | Volume 2 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
International Journal of Scientific Research in Science and Technology

5
287

जयशंकर प्रसाद के नारी पात्र

डॉ शशी सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

इस लेख में हम बताना चाहते है कि जयशंकर प्रसाद सांस्कृतिक पुनरुत्थान एवं राष्ट्रीय चेतना के भावों से पूरित निराशा और अवसादपूर्ण युग में नाट्य रचना में प्रवृत्त हुए अपने आदर्श विचारों से युक्त होने के कारण ऐसे नाटकीय चरित्रों का निर्माण किया जिन्होंने संस्कृति राष्ट्र प्रेम, बलिदान आदि मूल्यों के द्वारा समाज को नई दृष्टि प्रदान की। इनसे पूर्व के नाटककार ऐतिहासिक, पौराणिक तथा सामाजिक नाटकों का प्रणयन कर रहे थे लेकिन प्रसाद जैसा जीवन का गहन अध्ययन, समस्याओं में संवेग भरने की क्षमता नहीं थी। इसलिए इनके साहित्य में नारी स्वर्गीय सुषमा और गौरव से गौरवान्वित है यथार्थ धरातल पर रहकर जीवन रहस्यों की गुत्थी को सुलझाती है। कामायनी में प्रसाद नारी को श्रद्धामयी मानते हुए कहते है -

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नभ पग तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।''

मैंने अपने लेख में प्रसाद द्वारा वर्णित नारी के रूपों की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है।

शब्द कूंची

जयशंकर प्रसाद, 'मल्लिका', अजातशत्रु की 'देवसेना' स्कंदगुप्त की, नारी कोमल, कठोर।

प्रस्तावना

युग प्रवर्त्तक जयशंकर प्रसाद निराशा तथा अवसादपूर्ण युग में नाट्य रचना में प्रवृत्त हुए। अभिव्यक्ति कौशल के आदर्श रूप में ये अतीतकालीन उत्कर्ष का दर्शन लेकर आए। उनकी अन्वेषणशालिनी प्रज्ञा व चिंतनशील प्रतिभा ने अतीत के अंतराल में गहरे उतर कर भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक धरोहर में से ऐसे अमूल्य रत्नों (मूल्यों) का संधान किया जो जनमानस में नई चेतना उन्मेषित कर युग जागरण का संदेश देते हैं। सांस्कृतिक पुनरुत्थान तथा राष्ट्रीय चेतना के भावों से आपूरित होने के कारण प्रसाद जी ने नाटकीय चरित्रें द्वारा मानवता, वीरत्व, देशप्रेम, विश्वमैत्री, करुणा, भव्यता जैसे दिव्य मूल्यों की सार्थक पहचान को पुनजागृत किया।

यों तो प्रसाद युग तक अनेक प्रकार के नाटकों की रचना की जा चुकी थी, परंतु प्रसाद जी जैसा जीवन का गहन अध्ययन, व्यावहारिक जीवन की समस्याओं में भावावेग भरने की क्षमता, अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने नव-प्रस्फुटित पल्लवों से भी कोमल भावों से युक्त नारी तथा वज्र से भी कठोर पात्रों की सर्जना की है। उसके मध्य से प्रवाहित होता हुआ करुणासिक्त तथा विराटतायुक्त रस और उससे ओतप्रोत नारी का सृजन कर उसका चित्रण करना, वस्तुतः सराहनीय कहा जा सकता है। जिसकी सभी विद्वानों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। श्री जयनाथ नलिन के अनुसार –

'प्रसाद जी ने अपने हृदय की समस्त कोमलता, कल्पना की रंगीनी, भावना की स्निग्धता और कला की सफलता नारी चरित्र के भव्य निर्माण में प्रयुक्त की है।'[1]

© 2016 IJSRST | Volume 2 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
International Journal of Scientific Research in Science and Technology

आज का कर्णधार

डॉ शशी सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

विश्व सभ्यता व संस्कृति का आदि-स्रोत भारत, जिसने विश्व के अनाश्रित व अपभ्रष्ट मानव को मानव-मूल्यों की पहचान कराई, जीवन की राह दिखाई। लेकिन आज कहाँ गई, भारत की वह सभ्यता, संस्कृति तथा शैली, जिसने विश्व के समस्त देशों पर अपनी अमिट छाप छोड़ी थी। आज भारत स्वयं संकीर्णता व साम्प्रदायिकता के ऐसे कगार पर खड़ा है, जहाँ उसे किनारा दिखाई नहीं देता। मीलों दूर हाथ फैलाने पर अँधेरा ही अँधेरा उसकी बाँहों में सिमट आता है। ऐसे में उद्विग्न मन में उठता एक सवाल? मानवता छूट गई? खण्डित हुए सभी मूल्य, संस्कृति पड़ गई धुंधली। क्या हुआ? कैसे हुआ? क्यों हुआ, यह सब? ऐसे में आवश्यकता है कर्णधार की जो देश व राष्ट्र तथा नागरिकों की डूबती नैया की पतवार सँभाल कर किनारे तक पहुँचाए।

आधुनिक सामाजिक परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में आज का कर्णधार, या तो छद्म आधुनिकता के नशे में डूबकर, भौतिक आकांक्षाओं की अंधी दौड़ में अपने नैतिक मूल्यों की अचल सम्पत्ति खोता चला जा रहा है। साथ ही भौगोलिक, राजनैतिक, आर्थिक व साम्प्रदायिक संकीर्णताओं के मायाजाल में उलझकर, देश, समाज और राष्ट्र के विरोध स्वरूप अपनी आवाज बुलन्द कर रहा है। उसे खालिस्तान, गोरखालैण्ड, झारखण्ड और आजाद कश्मीर के लिए तो सर्वस्व न्यौछावर करना है पर राष्ट्रवादी चिंतन हेतु प्रगतिशील विचारों का, शक्ति को देश के उज्जवल भविष्य के निर्माण के लिए नहीं लगाना चाहता। विदेशी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण 'माईकल जैक्सन' जैसे गायक, हिटलर, सद्दाम हुसैन जैसे व्यक्तित्वों को अपना आदर्श समझ बैठता है। परिणामतः अपने देश की संस्कृति व भारतीय सभ्यता का निरादर करना ही उचित समझता है। प्राचीन काल से चली आ रही परम्पराओं को हेय दृष्टि से देखने लगता है।

आज का कर्णधार दिग्भ्रमित है इसलिए भारत को विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, धार्मिक व आर्थिक क्षेत्रों में अनेकों समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। सामाजिक दृष्टि से साम्प्रदायिकता, रूढ़िवादिता, जातिवाद, भाषावाद, अस्पृश्यता, दहेज प्रथा जैसी समस्याएँ, भारतीय समाज को भीतर ही भीतर खोखला बना रही है। राजनैतिक दृष्टि से तथाकथित राजनीतिज्ञों की स्वार्थलोलुपता, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, रिश्वतखोरी हिंसात्मक घृणित कार्य अपना विष फैला रहे हैं। धार्मिक क्षेत्र में धर्म के नाम पर जनता को उत्तेजित कर, अपनी मानसिक संकीर्णताओं के कारण विभिन्न समस्याएँ राष्ट्र को विनाश के गहरे कुएँ की ओर धकेल रही है। यदि आर्थिक पहलू पर गौर किया जाए तो चारों ओर भूखमरी, बेरोजगारी, आतंकवाद, चोरी, लूटपाट आदि वर्तमान भारत की ज्वलंत समस्याएँ हैं। शैक्षणिक दृष्टि से भारत की शिक्षा पद्धति पूर्णरूपेण संतोषजनक नहीं है। फलस्वरूप राष्ट्रीय व सांस्कृतिक एकता का भी नितांत अभाव हो गया है।

इन ज्वलंत समस्याओं का जिम्मेवार, वह सामाजिक ढाँचा है, जिसकी जड़ें खोखली हो गई है। बहुत हद तक मीडिया, संस्कारहीनता, पारिवारिक कटाव, घुटन अनुचित संरक्षण व मार्गनिर्देश के अभाव में आज का कर्णधार उत्तम संस्कारों से वंचित रह जाता है। वह मर्यादाहीन व उच्छृंखल हो जाता है। मीडिया के माध्यम से प्रसारित होती हुई वह अर्द्धनग्न सभ्यता, आज के बच्चों को चरस, गांजा, अफीम, चोरी, बेईमानी, लूटपाट, डकैती इत्यादि की राह पर अनायास ही ले जाती है, जहाँ चारों ओर नशे का साम्राज्य

International Journal of Management, Administration, Leadership & Education

A Bi-Annual Refereed Journal

Academic Avenue
(Publisher & Distributors)

अज्ञेय के कथा साहित्य में मानव गरिमा की प्रतिष्ठा

डॉ. शंकर कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी)
महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

अज्ञेय अपनी सम्पूर्ण आधुनिकता में मानववादी रचनाकार हैं। अपने उपन्यासों में उन्होंने 'मनुष्य की श्रेष्ठता का उद्घोज़' हर एक जगह किया है। ''मैं ऐसा मानता हूँ कि अब तक जितने प्राणी हमारी जानकारी में आये हैं, उनमें मानव श्रेष्ठ प्राणी है।''[1] इसमें मानव इसलिए श्रेष्ठ है कि मानव के पास स्वतंत्रता है ''स्वतंत्रता ही मानव का लक्ष्य भी है और उसकी मानवता का प्रमाण।''[2] स्वतंत्रता अज्ञेय के लिए बड़ा व्यापक अर्थ रखता है। स्वतंत्रता उनके लिए व्यक्ति का निजी विवेक अधिकार है[3] तथा स्वेच्छापूर्वक वरण या वरण की स्वतंत्रता सर्वोपरि मूल्य है।[4]

अपने उपन्यासों में निश्चित रूप से अज्ञेय मानववाद की प्रतिज़्ठा करते है। 'शेखर: एक जीवनी' में शेखर का व्यक्तित्व ही मानववादी है। 'शेखर: एक जीवनी' के रचना-काल में उसका विश्वास था कि - ''साहित्यकार समाज को बदलता है - यानि वह उसका अनिवार्य कर्त्तव्य और ध्येय है, लेखक अनिवार्यत: क्रांतिकारी होता है। शेखर के साक्षात्कार में वह अपने को इस किशोर मोह से मुक्त घोषित करता है - अब उन्हें लगता है कि लेखक सिवा अपने के कुछ को नहीं बदलता, सिवा कला की समस्या के कोई समस्या हल नहीं करता। उसमें कोई समाज परिवर्तनकारी शक्ति आती है या उसकी कृतियों का कोई ऐसा प्रभाव होता है, तो इसीलिए कि वह केवल अपने को बदलने के शुद्ध आग्रह के कारण व्यक्ति को एक अभ्रश्य सामाजिक मूल्य या प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठित करता है और समाज में मूल्य की प्रतिष्ठा ही उसका सच्चा सामाजिक कर्म है।''[5] लेखक अज्ञेय साहित्य का एक सामाजिक मूल्य मानते

International Journal of Management, Administration, Leadership & Education

A Bi-Annual Refereed Journal

Academic Avenue
(Publisher & Distributors)

परंपरा और आधुनिकता

डॉ. शंकर कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी)
महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

परंपरा का संबंध केवल अतीत से नहीं है बल्कि इसकी रेखा अतीत से चलकर वर्तमान में समायी हुई है। समय के लगातार प्रवाह में हर घटना गुजरी हुई घटना की याद दिलाती है - स्मृति, जिसकी परतें जमती हुई परंपरा को जन्म देती है। अतीत परंपरा की पृष्ठभूमि है और वर्तमान उसका प्रस्तुत चित्र। संस्कार अतीत के ही नहीं, वर्तमान के भी हो सकते हैं, तभी युग जीवन से युगातीत जीवन का सामंजस्य हो पाता है। परंपरा एक ऐतिहासिक बोध है, जो अतीत के व्यतीत का नहीं, उसकी वर्तमान का दर्शन है। निर्मल वर्मा का मानना है कि - ''वह चीज़, जिसे हम परंपरा प्रयोग और प्रगति को प्रश्रय नहीं देती, वह आत्मघात कर लेती है, उसका अस्तित्व ख़तरे में पड़ जाता है। प्रत्येक प्रयोग कालान्तर में परंपरा बन जाती है।''[1]

रचना के लिए परंपरा को तोड़ना ज़रूरी है। क्योंकि साहित्य का सम्बन्ध नित्य नये रूप को ग्रहण करती हुई मानव जीवन से है। एक रचनाकार को जीवन का प्रत्येक क्षण नयी अनुभूति देता है। नयी प्रेरणा-शक्ति देता है, नया स्वर, नये लय और नये प्रतिबिंब प्रतीक, शब्द और रचनाशक्ति का ओज उसमें विकसित होता रहता है। इसलिए प्रतिभा संपन्न कलाकार परंपरा की रूढ़िवादी व्यंजना को कभी स्वीकार नहीं करता। यही बात हमें निर्मल वर्मा में देखने को मिलती है। निर्मल वर्मा परंपरा और इतिहास को एक चीज़ मानते हैं। क्योंकि वर्तमान से छुटकारा पाने के लिए हम इतिहास की बढ़ते हैं। समय की धारा में वर्तमान ही ऐसा स्थिर बिन्दु है जहाँ मनुष्य अपनी नष्ठवरता के बावजूद इतिहास में अपनी नियति पाता है। निर्मल वर्मा का कहना है - ''हम जिसे मानवता का भविष्य कहते हैं वह इतिहास में जीने वाले व्यक्ति

International Journal of Management, Administration, Leadership & Education

A Bi-Annual Refereed Journal

Academic Avenue
(Publisher & Distributors)

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में स्त्री-पुरुष संबंध

डॉ. शंकर कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी)
महाराजा अग्रसेन कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आधुनिक युग में कथा-साहित्य का जो स्वरूप हमें मिलता है उसका इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है। उसका प्रारंभ उन्नीसवीं शताब्दी के बाद पाश्चात्य साहित्य के प्रभावस्वरूप हुआ है। उससे पूर्व कहानी और उपन्यास का प्राचीन रूप कथा के रूप में ही मिलता है। कथा की परंपरा काफी लंबे समय से चली आ रही है। 'कथा-सारित्सागर', 'हितोपदेश', 'पचतंत्र', 'वृहत्कथाएँ' आदि से कथाएँ प्रचूर मात्रा में मिलती हैं जिनका उद्देश्य अधिकतम उपदेशात्मक रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी के पश्चात् ही कहानी और उपन्यास विधा धीरे-धीरे सामाजिक यथार्थ की ओर मुड़ी है। किसी भी अन्य साहित्यिक विधा की तरह उपन्यास की कोई नपी-तुली परिभाषा कर पाना आसान नहीं है। इन्हें परिभाषा में बांधना कठिन इसलिए है कि मानव की आविष्कारण-शक्ति की कोई इति नहीं, उसकी नवनवोन्मेजशालिनी प्रतिभा अवरोध स्वीकार नहीं करती। यों भी एक वस्तु के अनेक पक्ष होते हैं - परिभाषाकार उस पर विभिन्न पक्षों से दृष्टिपात करते हैं, इसलिए उनके मत सर्वदा एक से नहीं होते। फिर भी उपन्यास के संबंध में कुछ ऐसी मान्यताएँ हैं जिनके आधार पर एक परिभाषा का निर्माण करने का प्रयत्न किया जा सकता है। उपन्यास कल्पनात्मक गद्य-कृति होती है - यह एक सर्वसमत तथ्य है। कथा - चाहे वह कितनी ही क्षीण क्यों न हो - उपन्यास के लिए अनिवार्य है। तीसरी बात यह है कि उसका संबंध मानव से - व्यष्टितः या समष्टितः होना चाहिए। वस्तुतः सीमित अर्थ में ही सही समष्टि का समावेश किसी न किसी रूप में अनिवार्य ही है। मानव-मन

International Journal of Management, Administration, Leadership & Education

A Bi-Annual Refereed Journal

Academic Avenue
(Publisher & Distributors)

अज्ञेय और जैनेन्द्र

डॉ. शंकर कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी)
महाराजा अग्रसेन कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रेमचंद के बाद उपन्यास को एक नई दिशा देने का काम जैनेन्द्र ने ही किया। इनका युग-परिवेश पर चर्चा काफी हो चुकी है क्योंकि अज्ञेय के युग-परिवेश पर चर्चा हमने पहले की ही है। दोनों एक ही काल खंड में रचना अपनी-अपनी शर्तों पर कर रहे थे। अतः वस्तु का बाहरी पक्ष और भीतरी पक्ष करीब-करीब दोनों का समान है पर भाव या अभिव्यक्ति पक्ष दोनों का भिन्न। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि मनोरचना के धरातल पर दोनों का व्यक्तित्व अलग-अलग है। तमाम आधुनिक और पाश्चात्य दर्शनों के प्रभाव ने स्त्री-पुरुष के संबंधों को बदल डाला था। स्त्री अब मन्थन के केन्द्र में दोनों उपन्यासकारों के उपन्यासों में आ गई। यह वह नारी नहीं है जो परंपरागत ग्रामीण समाज में संयुक्त परिवार की रीढ़ है और जिसके नारीत्व की सार्थकता मातृत्व में है, बल्कि नगर की वह शिक्षित मध्य वर्गीया नारी जो व्यक्ति बनती जा रही है और पुरुष के समकक्ष खड़ी हो रही है। प्रेमचंद ने भी नारी चित्रण को महत्वपूर्ण स्थान दिया था, पर समाज का उपयोगी सदस्य बनाने के लिए। प्रेमचंद ने भी नारी-चित्रण को महत्वपूर्ण स्थान दिया था, पर समाज का उपयोगी सदस्य बनाने के लिए। इसीलिए उन्होंने 'गोदान' के पहले कहीं सम्मिलित परिवार को विच्छिन्न नहीं होने दिया। 'गोदान' में ही दुनिया का चरित्र सम्मिलित परिवार पर आघात करता है, और उसका कारण यही है कि उसका पति गोबर अब नगरवासी है। व्यक्तिवाद, इसलिए नारी को रूढ़ियों से मुक्त करने का अत्यंत प्रबल अभिकरण है और उसके मुक्त होते ही परंपरागत आचार विचारों की

ISSN : 2395-2873

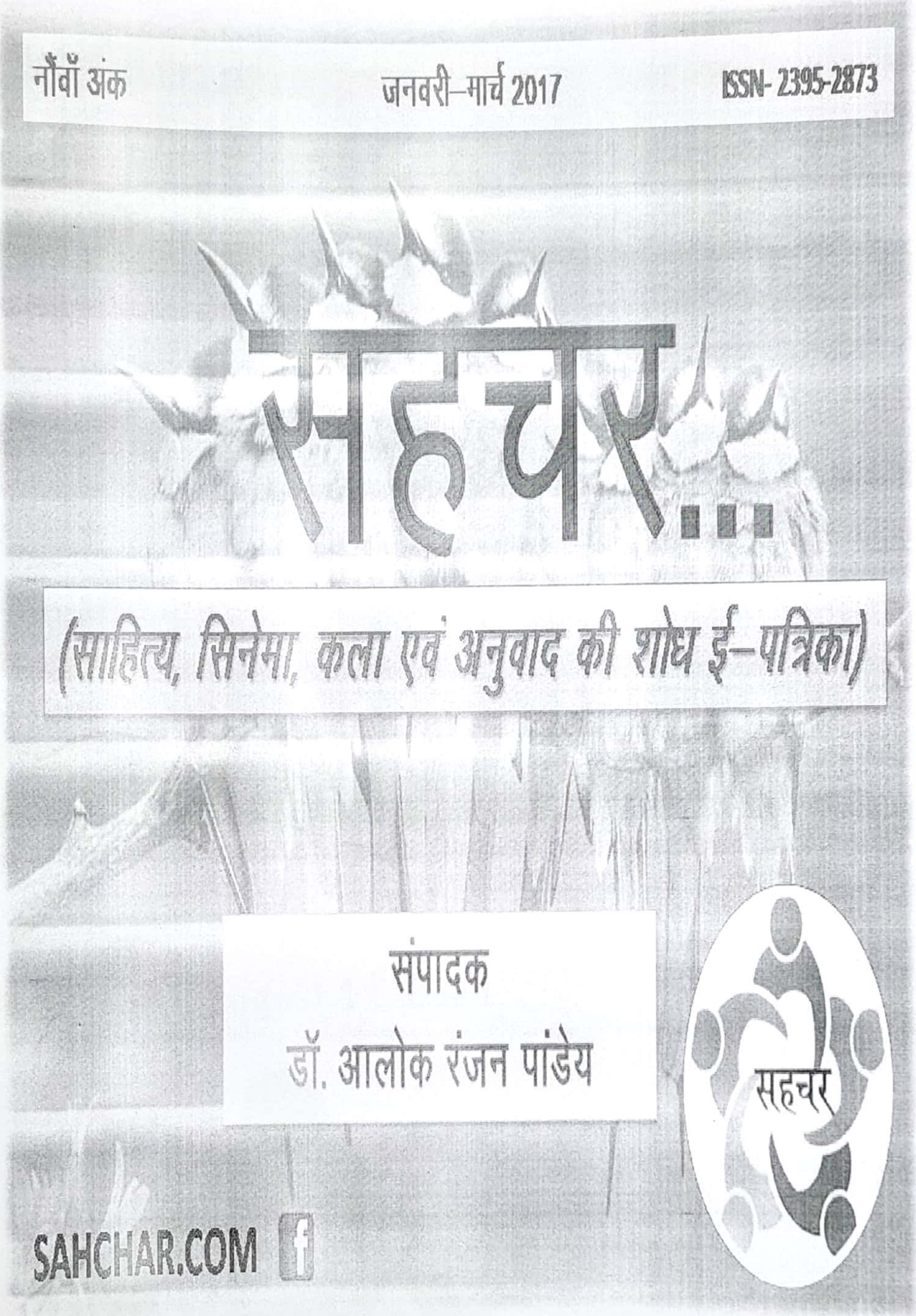

Scanned with CamScanner

ISSN : 2395-2873

प्रेम और सौंदर्य के कवि : प्रसाद - डॉ. तेजनारायण ओझा

सारांश :

प्रसाद एक ऐसे अराधक कवि हैं जिनके जीवन और काव्य का प्राणतत्व है प्रेम और सौंदर्य। दर्शन और चिति की अवधारणा को अपनी रचनात्मक प्रक्रिया के केंद्र में रखकर इन्होंने प्रेम के मानवीय स्वरूप को इतना व्यापक बना दिया है कि वह अलौकिक तक की यात्रा करता है। प्रेम की व्याप्ति इतनी गहरी और चेतस है कि राष्ट्र धर्म में भी परिवर्तित हो जाती है। इसमें त्याग और बलिदान का स्वरूप मौजूद है। उनकी चेतना में वेदांत का आनंदवादी दर्शन मौजूद है तो वहीं दूसरी तरफ गीता का निष्काम कर्म योग विद्यमान है। मनु के साथ श्रद्धा का जो प्रेम है वह समूची मानवता के कल्याण की चिंता से संवलित है। अतः उनमें समूची मानवता के प्रति प्रेम का निर्वचन छिपा हुआ है।

प्रसाद ने प्रेम की ही भांति सौंदर्य को विस्तृत दायरे में देखने का प्रयास किया। सौंदर्य में जो मांसल अभिव्यक्ति थी, प्रसाद ने उसको आत्म तक पहुंचाने का काम किया। इसलिए प्रसाद की चेतना सहजानुभूति को ग्रहण करती है। इन्हीं भूमिकाओं में प्रसाद का संपूर्ण साहित्य निर्मित हुआ है। उनकी काव्य निर्मिति में प्रेम और सौंदर्य की औदात्रिक संकल्पना के लिए कर्म, इच्छा और बुद्धि का सांमजस्य दिखता है। वही सृष्टि का नियामक तत्व है। उनका काव्य प्रेम के विविध रूपों के आख्यान का काव्य है। इसमें उनकी आत्मा और मर्मानुभूति मौजूद है जो पाठक को उसी चेतना से जोड़ता है। अतः उनकी आत्म-वेदना और काव्य-वेदना में कोई अंतर नहीं रह जाता। प्रेम और सौंदर्य की चेतना कवि प्रसाद को वैश्विक बनाती है। उसकी परिधि स्थानीय होकर भी नई परिधि का निर्माण करती है, जहां समस्त मानवता समाहित हो जाती है। उनकी स्वानुभूतियां सर्वव्यापी होकर सार्वभौमिक हो जाती हैं। इस प्रकार प्रसाद अपनी संपूर्ण चेतना में प्रेम और सौंदर्य के ऐसे कवि हैं, जिन्होंने इन दोनों ही आयामों को दार्शनिक आधार पर स्थापित किया है।

बीज शब्द

उदात्त प्रेम, राष्ट्रीयता, आनंदवादी दर्शन, रीतिकालीन मांसलता, आत्म-वेदना और काव्य-वेदना, कर्म, इच्छा और बुद्धि, सहजानुभूति , तत्ववादी दर्शन।

परिचय

प्रसाद की काव्य चेतना और उनकी रचना प्रक्रिया का अनिवार्य घटक है प्रेम और सौंदर्य। कहना समीचीन होगा कि किसी भी कवि की चेतना उसके परिवेश और व्यक्तिगत साक्षात्कृत संवेदनाओं और अनुभूतियों से ही बनती है। प्रसाद इससे अछूते नहीं हैं। काशी का परिवेश और पारिवारिक स्थिति ने उनके चेतस का निर्माण किया। बच्चन सिंह [1] के अनुसार पारिवारिक दशा और उनके प्रदेश का प्रभाव उनकी कविता में मंदता का कारण है।

Scanned with CamScanner

5

दसवाँ अंक ISSN : 2395-2873

दसवाँ अंक अप्रैल—जून 2017 ISSN-2395-2873

तीसरा वर्ष

सहचर...

(साहित्य,सिनेमा,कला एवं अनुवाद की ई-पत्रिका)

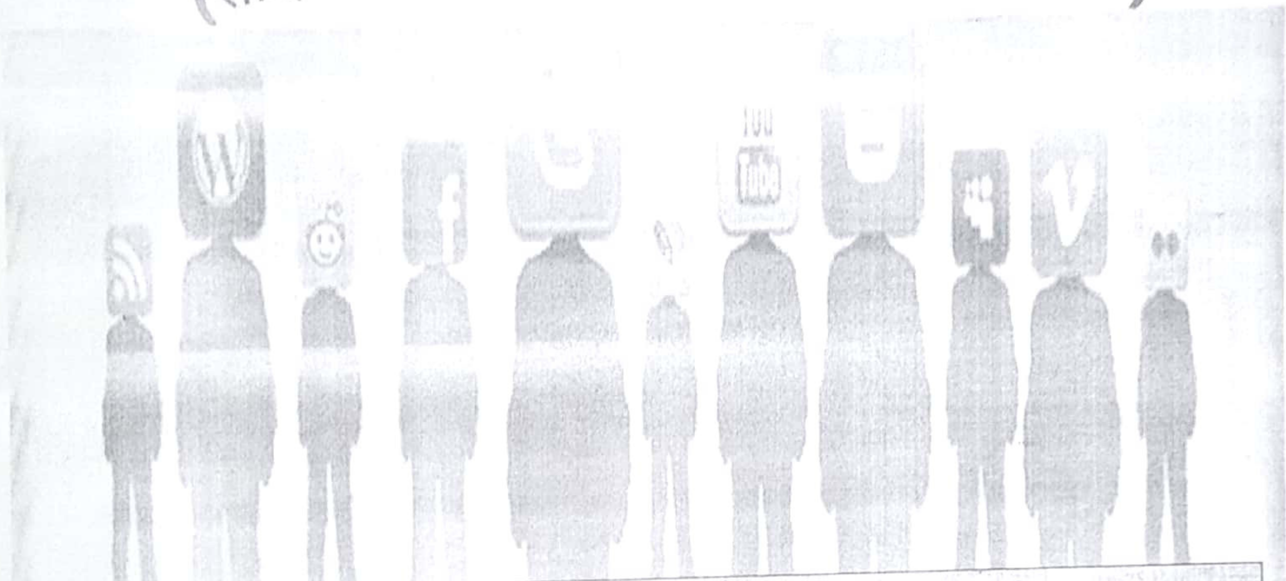

न्यू—मीडिया विशेषांक

संपादक

डॉ. आलोक रंजन पांडेय

SAHCHAR.COM

Scanned with CamScanner

 ISSN : 2395-2873

आधी आबादी का स्वर : बेतवा बहती रही - डॉ. तेज नारायण ओझा/ रजनी पाण्डेय/ रश्मि पाण्डेय

सार :

स्त्री लेखन का आरंभिक दौर सामाजिक आदर्श और नैतिकता से प्रेरित था। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद बदले हुए माहौल और मध्यवर्ग के नए परिवेश में इनके कथावस्तु के केंद्र में स्त्री-पुरूष संबंध को अपने नजरीये से परिभाषित करने का हौसला नजर आता है। नई सदी के मुहाने पर आकर उनका कथा संसार व्यापक नजर आने लगता है। नारी जीवन के प्रश्नों के समक्ष आधुनिक महिला कथाकारों ने अपनी तीक्ष्ण लेखनी चलाई है। मैत्रेयी जी उन्ही में से एक जाना पहचाना नाम है। कथा भूमि का केंद्र है बुंदेलखंड और वहां का जनजीवन। इस परिवेश में रहनेवाली 'उर्वशी' की त्रासद जीवन कहानी को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास 'बेतवा बहती रही' मैत्रेयी जी का प्रथम उपन्यास है। स्त्री की सत्ता और क्षमता को स्वतंत्र रूप से उभारना स्त्री के प्रति रूढिबद्ध धारणाओं का निषेध करना एवं स्त्री की अस्मिता को उजागर करना मैत्रेयी जी का लक्ष्य रहा है। उपन्यास में मैत्रेयी जी ने कथा नायिका उर्वशी के माध्यम से त्याग, सेवा, समर्पण भावना को विस्तृत रूप से उल्लेखित किया है। पुरुष प्रधान समाज में पुनर्विवाह एक ऐसा विचार है जो पुरुष के लिए सुखद व सुलभ जीवन, स्वतंत्रता, मान-मर्यादा का हरण नहीं करता, परंतु एक स्त्री के जीवन के लिए पुनर्विवाह उसके स्वातंत्र्य चेतना, इच्छित जीवन की चाह, भविष्य के प्रति असुरक्षा को शंकामुक्त नहीं करता। इस उपन्यास में मैत्रेयी जी ने समाज की दुहरी मानसिकता और लैंगिक असमानता को दिखाने का प्रयत्न किया है।

की-वर्ड्स:

लैंगिक असमानता, विधवा विवाह, पुरुष प्रधान समाज।

परिचय :

आज का स्त्री साहित्य, स्त्री संवेदना, स्त्री भाषा, स्त्री के शब्दकोश, स्त्री के सम्मान, स्त्री की सत्ता में हिस्सेदारी और इतिहास में स्त्री की प्रतिष्ठा के लिए प्रयासरत है। नारी जीवन के प्रश्नों के समक्ष आधुनिक महिला कथाकारों ने अपनी तीक्ष्ण लेखनी चलाई है। मैत्रेयी जी उन्ही में से एक जाना पहचाना नाम है। 'बेतवा बहती रही' उनका प्रथम उपन्यास है। कथा भूमि के केंद्र में बुंदेलखंड और वहां का जनजीवन है। उपन्यास की नायिका उर्वशी की त्रासद जीवन कहानी हमारे समाज के किसी भी निर्धन असहाय स्त्री की हो सकती है। पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था ने नारी को हेय समझा है। नारी की लड़ाई पुरुष मानसिकता से है। पुरुष प्रधान समाज का चेहरा कितना भयावह तथा विद्रूप है, यही दिखाना उनके साहित्य का उद्देश्य रहा है। उनके साहित्य के केंद्र की दूरी में नारी है। नारी का अपना एक जीवन है, उसे सिर्फ महिमामंडित होकर जीना नहीं अपितु मानव समाज में गरिमापूर्ण सम्मान व अधिकार से जीना है।

'बेतवा बहती रही' उपन्यास एक तरफ सर्वहारा किसान की अंतहीन यातना को चित्रित करता है, वहीं दूसरी ओर कथा नायिका उर्वशी की दर्द भरी जिंदगी को भी स्वर देता है। उपन्यास के अन्य स्त्री चरित्र भी किसी न किसी दृष्टि से विशिष्ट है। मीरा, जीजी, नानी, दादी, बड़ी दादी, शेरा की साहसी पत्नी- ये सभी अविस्मरणीय चरित्र हैं। स्त्री की

Scanned with CamScanner

Year - 1 Issue-1 Part-2 August-2016 ISSN 2456-0898

वसुधैव कुटुम्बकम्

GLOBAL THOUGHT

(ग्लोबल थॉट)

MULTIDISCIPLINE BILINGUAL RESEARCH JOURNAL

An International Refereed Quarterly Research Journal

67

भाषा साहित्य और मीडिया 185
डॉ. श्रीमती कैलाश गोयल

समकालीन संदर्भ में राजकाज की हिन्दी 192
डॉ. सीमा रानी

द्रौपदी का अप्रतिम व्यक्तित्व 195
डॉ. धनपति कश्यप

सगुण भक्तों का मानवतावादी अभियान
(एकता के परिप्रेक्ष्य में) 199
प्रो. कैलाश नारायण तिवारी

मौर्यकालीन आर्थिक जीवन 202
डॉ. एम.एम. रहमान

आयुर्वेद में स्वस्थ जीवन के लिए पथ्य-अपथ्य
आहार का स्वरूप 206
डॉ. सुषमा राणा

बालसाहित्य का बालमन पर प्रभाव 209
डॉ. चित्रा सिंह

मुक्तिबोध का बिंब-विधान 215
डॉ. प्रमोद कुमार द्विवेदी

असंवाद का हिमबिंदु और आज का नाटक 218
डॉ. आशा रानी

गुनाहों का देवता उपन्यास का साहित्यिक पाठ... 223
डॉ. रीनू गुप्ता

नामवर सिंह की दृष्टि में दलित साहित्य 227
डॉ. चन्द्रशेखर राम

विद्यापति के गीतों का वैशिष्ट्य 231
डॉ. राम किशोर यादव

नागार्जुन के काव्य में अभिव्यक्त
सामाजिक यथार्थ 235
सुनीता खुराना

The Dialectics of Overcoming Slavery —— 239
Dr. C. V. Babu

বাংলা ভাষায় প্রথম সমুদ্র নির্ভর জেলে জীবন :
"এক হাতে দাঁড়, অন্য হাতে জাল" 244
* অনির্বাণ সাহ

शोध-पत्र

नामवर सिंह की दृष्टि में दलित साहित्य

डॉ. चन्द्रशेखर राम*

दलित साहित्य एक नया विमर्श है। इसके विविध आयाम हैं। इस पर नामवर सिंह की दृष्टि महत्वपूर्ण है। हिन्दी के वरिष्ठ आलोचक प्रो. नामवर सिंह ने कई आलोचनात्मक पुस्तकों का सम्पादन किया है। उनकी कई पुस्तकें हिन्दी साहित्य जगत में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही हैं। अपनी आलोचनात्मक कृतियों में कई मुद्दों को उभारते समय उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण पहलू छोड़े भी हैं। दलित साहित्य उनमें से एक ऐसा ही मुद्दा है। दलित साहित्य पर उन्होंने स्वतन्त्र रूप से कोई आलोचनात्मक पुस्तक नहीं लिखी। पर संगोष्ठी, साक्षात्कार एवं लेखों के माध्यम से दलित साहित्य के संदर्भ में उन्होंने बहुत से पहलू उभारे हैं। उन्हीं दृष्टिकोणों का विवेचन और विश्लेषण करने का प्रयास है। दलित विषयक मान्यताओं के कुछ पहलू का विश्लेषण किया है। इसमें प्रो. सिंह के दृष्टि हम यहां सिर्फ उन्हीं दलित सवालों को केन्द्र में रखकर जांच-पड़ताल करेंगे जो प्रो. सिंह के विचार हैं।

दलित साहित्य की शुरुआत के बारे में प्रो. सिंह का मानना है कि हिन्दी क्षेत्र से पहले अन्य भाषाओं में दलित चेतना संबंधी अभिव्यक्ति की शुरुआत हुई। उनके अनुसार, '''कलम' का एक अर्थ कलम लगाना भी होता है। जैसे कलमी आम की कलम लगायी जाती है, तो हमने कहा कि मूल पौधा तो मराठी का है, अब हिन्दी में इसकी कलम लगायी जा रही है और कभी-कभी कलम से तैयार पौधा बहुत अच्छा भी होता है। हो सकता है कि हिन्दी में यह कलम अच्छी लगे।''[1] उनका अभिप्राय यह है कि हिन्दी भाषा में दलित चेतना का स्वर अन्य भाषाओं की नकल है जैसा कि उन्होंने अपने कथनों में स्वीकार किया है।

हिन्दी के दलित लेखन को मराठी की कलम बताया जाना प्रो. सिंह के लिए गौरव की बात हो सकती है पर दलित चेतना के लिए आपत्तिजनक है। उनके सोच, विचार के विषय में इस तरह के विचार सचमुच दलित लेखन को कलम करना है। शोध करने पर स्पष्ट होता है कि दलित चेतना की शुरुआत हिन्दी क्षेत्र में बहुत पहले शुरू हो चुकी थी, पर सवाल यह नहीं है कि दलित चेतना की शुरुआत किस भाषा में हुई। सवाल यह है कि दलित चेतना की शुरुआत हुई है अथवा नहीं? यही दलितों के लिए सबसे बड़ा सवाल है। पर इस तरह के सवाल से प्रो. सिंह कन्नी काट लेते हैं जैसा कि उनके कथनों से स्पष्ट होता है-''दलित साहित्य अपने इस उभार के इस दौर में मराठी में, गुजराती में, कन्नड़ में तेलगू में और अन्य भाषाओं में जहां पर दलित साहित्य विकास के दो दशकों में एक बड़ी मंजिल पूरी कर चुका है। हमारे यहां उसका आरंभ अब हो रहा है-पिछले चार-पांच वर्षों में।''[2]

प्रो. सिंह जैसे आलोचक दलित चिन्तकों के स्थिति से उभरे विचारों की गम्भीरता जांचने के बजाय उस लेखन को निरर्थक सिद्ध करने में लगे हैं जैसा कि उपरोक्त कथनों से स्पष्ट होता है।

प्रो. सिंह के मतानुसार दलित कथनों में कल्पनाशीलता की कमी है। उनके शब्दों में, ''साहित्य-सृजन के लिए जो कल्पनाशीलता जरूरी है, वह दलित लेखकों में है या नहीं। अतिशय लगाव से भी कठिनाई होती है।''[3]

प्रो. सिंह दलित साहित्य के बारे में जैसी सोच विकसित करते हैं वह अस्पष्ट है क्योंकि दलित साहित्य क्या है? किस अनुभूति को वे साहित्य में दर्ज करना चाहते हैं-दलित लेखकों, चिन्तकों के इन विचारों को समझकर उनके साहित्य के शास्त्र के विषय में वे अपनी राय कायम करते तो ज्यादा बेहतर होता। वे जिस कल्पनाशीलता को आवश्यक मानते हैं वह दलित साहित्य के लिए निरर्थक है। जैसा कि कंवल भारती का मानना है, ''कल्पना की जरूरत प्रतीक या बिम्ब-संयोजन के लिये तो हो सकती है, पर अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए नहीं।

*असिस्टेंट प्रोफेसर, महाराजा अग्रसेन कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दलित साहित्य का प्रमुख तत्त्व अनुभूति ही है और यह दलित जीवन को जीकर ही प्राप्त होती है। उसके साथ दूरी या तटस्थता बरत कर नहीं।''[4]

प्रो. सिंह के मतानुसार दलित साहित्य का लेखन जरूरी नहीं है कि दलित ही लिखे। उनका स्पष्ट शब्दों में कहना है कि, ''ट्रेजेडी में होकर ट्रेजेडी लिख पाना कठिन है।''[5]

प्रो. सिंह के विचारों से असहमति जताते हुए कंवल भारती उनकी सोच को रेखांकित करते हैं, ''डॉ. नामवर सिंह दलित साहित्य को एक ट्रेजेडी मानते हैं। यह पूरी तरह भ्रामक और दुर्भाग्यपूर्ण सोच है। दलित साहित्य जीवन का साहित्य है, ट्रेजेडी का साहित्य नहीं है। दलित जीवन वर्णव्यवस्था की एक त्रासदी जरूर है, लेकिन सामाजिक परिवर्तन और नये मूल्यों की पक्षधरता की साहित्य भी इसी त्रासदी की उपलब्धि है। ...त्रासदी से गुजरकर ही त्रासदी को समझा जा सकता है। जिनके लिये वर्णव्यवस्था स्वर्ग के समान है, वे उसकी त्रासदी को कैसे समझ सकते हैं?''[6]

प्रेमचन्द द्वारा लिखित जिस दलित साहित्य का मूल्यांकन दलितों द्वारा किया जा रहा है। उसे देखकर प्रो. सिंह स्वीकार नहीं कर पाते हैं बल्कि दलित साहित्यकारों को आगाह करते हुए कहते हैं कि–''दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचन्द को गड्डमड्ड करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। वस्तुगत ढंग से प्रेमचन्द के साहित्य में दलित जीवन का और दलित साहित्य का जो भी स्वरूप प्रकट होता है उसे स्पष्टता से कहते हुए दलित साहित्य, जो अपनी स्वतन्त्रता और स्वायत्तता प्राप्त करना चाहता है और उसका आग्रही है, उसका पूरा सम्मान किया जाना चाहिए। ये मेरी धारणा है। चिन्तन के क्षेत्र में घपला करने के बजाय, गड्डमड्ड करने के साथ स्पष्टता का ये तकाजा है।''[7]

प्रेमचन्द ने अपने कथा साहित्य में दलितों का चित्रण तो जरूर किया पर वास्तव में दलित साहित्य का लेखन नहीं किया है। जबकि यह कटु सत्य है कि दलित लेखक प्रेमचन्द के कथा साहित्य का मूल्यांकन गड्डमड्ड करके नहीं बल्कि उनके साहित्य का परीक्षण दलित मानदण्डों के आधार पर कर रहे हैं। वस्तुतः जो गैर दलित, दलित साहित्य के समर्थन में लेखन कर रहे हैं, उनके मानदण्ड को भरपूर सम्मान दलित लेखक दे रहे हैं सिर्फ प्रेमचन्द की ही बात नहीं बल्कि अन्य गैर दलितों ने भी जो कुछ दलित साहित्य का लेखन दलित साहित्य के समर्थन में किया है उनका साहित्य में अक्षुण्ण स्थान है।

प्रो. सिंह प्रेमचन्द की दलित जीवन से संबंधित कहानियों की इस हद तक प्रशंसा के पुल बांधते हैं कि दलितों के द्वारा रचित कहानियों के प्रति वे अनभिज्ञता दिखते हैं जो कि दृष्टिकोण का अन्तर है, ''मैं जानता हूं कि सद्गति, ठाकुर का कुंआ, दूध का दाम में प्रेमचन्द की यथार्थवादी कला अपने शिखर पर पहुंच चुकी थी। दलित जीवन पर गैर दलित द्वारा लिखी ऐसी मार्मिक कहानियां हिन्दी में न उस समय भी और न आज ही हैं। स्वयं किसी दलित लेखक ने ऐसी मार्मिक कहानी दलित जीवन को लेकर लिखी है कि नहीं, मैं नहीं जानता।''[8]

प्रो. सिंह का यह दृष्टिकोण विचारणीय है। दलित जीवन को लेकर मार्मिक और सत्य का निरूपण है ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियां–सलाम, बैल की खाल, या मोहनदास नैमिशराय की कहानियां–आवाजें, अपना गांव, हारे हुए लोग, उसके जख्म, या प्रो. श्यौराज सिंह 'बेचैन' की कहानियां–रावण, शोध-प्रबन्ध या चन्द्रभान प्रसाद की कहानियाँ–चमरिया माई का श्राप आदि में देखी जा सकती है। ये सभी कहानियां दलित चेतना की प्रतिनिधि और कालजयी कहानियां हैं। इन कहानियों में दलित चेतना का जो तेवर मिलता है वह प्रेमचन्द की कहानियों में नहीं। अतः सच्चाई को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता। प्रेमचन्द की कहानियों की प्रशंसा यथार्थवादी कला की दृष्टि से की है। प्रेमचन्द की कहानियों की भाषा अवश्य बेजोड़ है पर कोई भी रचना सिर्फ भाषा के आधार पर नहीं बल्कि विचारों के कारण सशक्त होती है।

प्रो. सिंह दलित साहित्य-लेखन के बारे में एक विचार और देते हैं कि दलित और गैर दलित दोनों के बीच गहरा संवाद दलित साहित्य लेखन को लेकर होना चाहिए–''क्या दलित जीवन को चित्रित करने का अधिकार केवल दलितों को ही है, उन्हीं तक सीमित रहे या दूसरे लोगों के लिए भी वह खुला हुआ है और खुला होना चाहिए।''[9] प्रो. सिंह दलित साहित्य के नेतृत्व के विषय में भी अपना मानदण्ड बनाना चाहते हैं–''जरूरी नहीं कि हमें हमारे ही बीच का आदमी रिप्रेजेन्ट करे। अगर ऐसा होता तो पूरे राष्ट्रीय आन्दोलन में किसी और को कोई और रिप्रेजेन्ट करता रहा है।''[10]

इन शब्दों से यह प्रकट होता है कि दलित साहित्य का नेतृत्व खुद दलित न भी करे तो चलेगा। गैर दलित के पक्ष में वे अधिक जोर देते हैं तभी प्रो. सिंह ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि–''कोई जरूरी नहीं है कि जो दलित है वही दलित समाज का सबसे बड़ा हितैषी हो। बहुत आई.ए.एस., आई.पी.एस. हो जाते हैं, दलित। लेकिन उन्हें अपनी नौकरी की कितनी चिन्ता है, कितनी दलितों की? कांशीराम को देख रहे हैं, बाबू जगजीवन राम को देखा। और भी कई दलित नेता हैं, मंत्री बने हैं। उनको भी देखा है। तो जरूरी नहीं है कि दलित ही दलितों के लिए सब कुछ कर रहे हैं और गैर दलित कुछ नहीं कर रहे हैं। यह न तो राजनीति

Refereed Journal • ISSN : 2456-0898

Chandra Shekhar Bharti

70

में सही है और न साहित्य में।''[11]

प्रो. सिंह का यह दृष्टिकोण पूर्वाग्रह से प्रेरित है इसीलिए वे इस तरह का दलित नेता और दलित द्वारा रचित साहित्य के बारे में इस तरह का बयानबाजी गलत ढंग से कर रहे हैं क्योंकि जिन नेताओं की बात प्रो. सिंह अपने उपरोक्त कथनों में कर रहे हैं उन्हें जब-जब नेतृत्व करने का अवसर मिला वे लोग दलित के उत्थान के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये हैं जो प्रो. सिंह को दिखाई नहीं देता बल्कि उनकी लोकप्रियता को खारिज करने के लिए गैर दलित को उनके समक्ष तुलना करने लगते हैं यदि गैर दलित ही दलितों के उत्थान के लिए अच्छा कार्य किया होता तो डा. अम्बेडकर को अलग से दलितों की मुक्ति की लड़ाई लड़नी न लड़नी पड़ती। कांशीराम को 'बसपा' की स्थापना न करनी पड़ती। इसी प्रकार हम उत्तर प्रदेश की पूर्व मुख्यमंत्री 'मायावती' के शासन काल को देख सकते हैं। मायावती के शासनकाल में दलित उत्थान के कई कार्य किये गए। इसके बावजूद प्रो. सिंह जब यह कहते हैं कि दलित मंत्री, प्रशासक दलित का भला नहीं करते हैं तो वह एकदम से झूठ बोलते दिखलाई पड़ते हैं। क्योंकि बहुत से दलित प्रशासक एवं मंत्री बने जिन्होंने दलित समुदाय का भला किया। डा. धर्मवीर आई.ए.एस. अधिकारी होते हुए भी उन्होंने दलित सवालों को विभिन्न दृष्टिकोण से जितना अपने लेखन का मुख्य मुद्दा बनाया है और बना रहे हैं उतना तो गैर दलित लेखक होने के बावजूद भी दलित सवालों को अपने लेखन का मुख्य मुद्दा नहीं नहीं बनाया। इससे सिद्ध होता है कि प्रो. सिंह यह नहीं चाहते हैं कि 'बसपा' की लोकप्रियता बढ़े और कोई दलित मुख्यमंत्री बने बल्कि वह इसका हर स्तर पर विरोध करते हैं तभी वे 'बसपा' के समर्थन में कुछ नहीं बोलते हैं बल्कि इसका जमकर विरोध करते हैं जैसा कि उनके साक्षात्कार से स्पष्ट होता है कि-''मैं देखता हूँ कि कांशीराम-मायावती भाजपा के सहयोग से और मुलायम सिंह से अलग होकर सरकार बनाते हैं। यह संयोग तो घटित हुआ, भले ही कुछ दिनों बाद टूट गया, लेकिन हुआ तो। यह बड़ी अजीब बात है कि एक ओर तो यह लोग सवर्णवाद के खिलाफ संघर्ष करते हैं और वहीं सवर्णवाद जब अपने पूर्ण संयुक्तवादी रूप में दिखाई पड़ता है तो उससे सहयोग लेने में इन्हें कोई संकोच नहीं होता। मैं नहीं समझ पाता कि वह कौन सी शिनाख्त, अस्मिता या पहचान की समझ है जिसके आधार पर आप जिसे 'मनुवादी' कहकर विरोध करते हैं, उन्हीं लोगों का सहयोग किसके विरुद्ध लेते हैं।[12]

राजनीतिक हलके में यह सर्वविदित है कि 'मायावती' मुलायम सिंह यादव से अलग होकर भाजपा के सहयोग से अपनी शर्तों के मुताबिक सरकार बनाती है। पहली बार कोई दलित महिला 'भाजपा' के सहयोग से उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री बनती है। इतनी बड़ी बात इतिहास के पन्नों में पहली बार हुई कि कोई दलित महिला मुख्यमंत्री बनी।

दलित स्थिति का जायजा लेने पर स्पष्ट है कि आज दलित मात्र प्रशासनिक अधिकारी ही नहीं बनना चाह रहे हैं बल्कि वह अपनी पहचान प्रत्येक क्षेत्र में करना चाहते हैं। प्रो. सिंह के शब्दों में, ''दलित लोग केवल पुलिस कप्तान या सरकारी अफसर ही नहीं होना चाहते बल्कि वे बुद्धिजीवियों के बीच में भी कोशिश कर रहे हैं और प्रोफेसर होना चाहते हैं, लेखक होना चाहते हैं, सांस्कृतिक क्षेत्र में भी आ रहे हैं–यह स्वागत योग्य है।''[13]

डा. धर्मवीर की पुस्तक-कबीर के आलोचक पर प्रो. सिंह (नई दिल्ली, 29 सितम्बर 1998 को जनवादी लेखक संघ की ओर से स्थानीय राजेन्द्र भवन में एक गोष्ठी का आयोजन किया गया था) गोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए प्रो. नामवर सिंह ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि–''डा. धर्मवीर ने अपनी पुस्तक के माध्यम से सही समय पर सही हस्तक्षेप किया है। उन्होंने कहा कि कबीर पर कब्जे की लड़ाई अर्से से चली आ रही है, लेकिन पहली बार किसी दलित ने यह हौसला दिखलाया है कि वह कबीर पर कब्जा कर दिखाए। सवर्ण होने की वजह से अब तक जिन चीजों की ओर हमारा ध्यान नहीं गया था, इस पुस्तक के आने के बाद उधर हमारा ध्यान जाने लगा है।''[14]

लेकिन अगले ही क्षण प्रो. सिंह का अन्तर्विरोध भी सामने आ जाता है। डा. धर्मवीर ने अपनी पुस्तक में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की कटु आलोचना की है, जिसे प्रो. सिंह पचा नहीं पाते हैं बल्कि इस प्रवृत्ति का घोर विरोध करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रशंसा में उनके विचारों को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि, ''1941 ई. में सर्वप्रथम द्विवेदी जी ने ही कहा था 'कबीर दलित और दरिद्र थे' इसके अलावा उन्होंने यह भी कहा कि ''पिछले एक हजार साल के इतिहास में कबीर जैसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ। ऐसी बात आज भी कोई नहीं लिख सकता है। ब्राह्मण होने के नाते द्विवेदी जी का झुकाव तुलसी की ओर होना चाहिए था लेकिन ऐसा नहीं है। वे तुलसी को प्रतिद्वंद्वी के रूप में तो रखते हैं, लेकिन तेज में अद्वितीय वे कबीर को ही कहते हैं।''[16]

प्रो. सिंह के दलित विषयक सवालों का विश्लेषण विस्तार से विभिन्न कोणों से करने के बाद निष्कर्षतः उनकी दोहरी मानसिकता ही उजागर हुई है। क्योंकि वे एक तरफ दलित द्वारा सृजित दलित साहित्य की प्रशंसा भी करते हैं और वहीं

Chandra Shekhar Prem

71

दूसरी ओर विरोध करने से भी नहीं चूकते। माहौल के अनुसार दलित साहित्य पर विचार नहीं बनाये जाने चाहिए।

इस तरह की नकारात्मक सोच दलित के बारे में नहीं होनी चाहिए। प्रो. सिंह को सकारात्मक पहलू का विस्तार से चर्चा करनी चाहिए थी यही कारण है कि प्रो. सिंह के बारे में ऐसी लोगों की अवधारणा है कि प्रो. सिंह जिस प्रकार का मंच देखा वैसा ही दलित प्रश्नों के बारे में अपना मन्तव्य दे दिया जबकि यह प्रवृत्ति दलित साहित्य के लिए घातक है। इससे खतरनाक विचार और क्या हो सकता है? जिस प्रकार का माहौल देखा उसी के अनुसार अपने आपको ढाल लेना वास्तव में दलित साहित्य दलित के ऊपर हुए अत्याचार का प्रामाणिक दस्तावेज है।

संदर्भ सूची

1. शिवकुमार मिश्र सं. - नया पथ, अंक 26, जनवरी 1998, पृ. 8
2. सदानंदशाही सं. - दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचन्द, पृ. 66
3. वही, पृ. 171
4. वही, पृ. 179
5. वही, पृ. 171
6. वही, पृ. 180
7. वही, पृ. 56
8. वही, पृ. 65
9. वही, पृ. 66
10. वही, पृ. 66
11. वही, पृ. 195
12. शिवकुमार मिश्र सं. - नया पथ, अंक 26, जनवरी 1998, पृ. 12
13. वही, पृ. 8
14. डा. जयनारायण सं. - कल के लिए, दिसम्बर 1998, पृ. 68
15. वही, पृ. 68

Chandra Shekhar Ram

Refereed Journal • ISSN : 2456-0898

नारी मुक्ति की अवधारणा और उसके विविध आयाम

डा. चन्द्रशेखर राय*

नारी मुक्ति कोई काल्पनिक या अमूर्त अवधारणा नहीं है, बल्कि यह एक ठोस और यथार्थवादी अवधारणा है जो मानव होने के नाते बुद्धिजीवियों द्वारा काफी समय के बाद पहचानी गयी। हालांकि इसके समर्थकों की संख्या अभी उतनी नहीं है जितनी होनी चाहिए। साथ में इनमें कुछ ऐसे है जो ऊपरी मन से इसका समर्थन करते है, परन्तु निजी जिन्दगी में अपनी पत्नी के साथ उसी क्रूरता से पेश आते हैं जिसका वे मंच से जोरदार विरोध करते है। इस अवधारणा का जुड़ाव सीधा समाज और सामाजिक होने के नाते निरन्तर पिसने वाली स्त्री के जीवन के उन मोड़ों से है जिनमें वह पुरुष की सामंतवादी प्रवृत्ति का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। जैसाकि 'इतिहास बोध' पत्रिका के वर्कशाप में कहा गया लड़की का यह कथन- "लोग वर्ग की बात करते हैं, पर किसी भी वर्ग का पुरुष नारी के लिए सिर्फ पुरुष ही साबित होता है।"[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि खुद को दासता से मुक्ति की आवाज उठाने वाला पुरुष वर्ग भी नारी के लिए वही व्यवस्था कायम रखना चाहता है जो स्वयं उसे पसंद नहीं। स्त्री उसी समाज का अविभाज्य अंग है, जिसे पुरुष ने अपने हित में खड़ा किया। अतः नारी की मुक्ति तब तक संभव नहीं है, जब तक कि इस पूरे सामाजिक ढांचे में परिवर्तन न किया जाये और उसे नारी के हर पहलू से जोड़कर पुनर्व्यवस्थित न किया जाये क्योंकि नारी की मुक्ति समस्त समाज की वास्तविक मुक्ति का अनिवार्य और अविभाज्य अंग है। जैसाकि पं0 जवाहरलाल नेहरू ने कहा है कि लोगों में जागृति लाने के लिए सर्वप्रथम नारियों को जागृत करना आवश्यक है। वह एक बार जब वह गतिशील हो जायेगी, परिवार, गांव तथा राष्ट्र सभी गतिशील होंगे। समाज पूरी तरह से तभी बदलता है जब व्यवस्था की प्रकृति और चरित्र बदलते हैं। इसलिए नारी की मूल समस्याओं का हल सारे समाज की समस्याओं के हल के साथ ही संभव है।

नारी मुक्ति के सवाल को सामाजिकता के पहलू में रखते हुए भी सबसे पहले उस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है जो नारी शोषण के केन्द्र रहे है, और जिनसे मुक्ति दिलाने का समाज का नैतिक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य दायित्व है। इसके अलावा आज जो पुरुष चारों ओर मानव स्वतन्त्रता, मौलिक अधिकारों, नागरिक अधिकारों, शोषण और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है तो उसी के द्वारा नारियों की दासता को वैधता प्रदान करने का कोई औचित्य नहीं रह जाता है। साथ ही यह बात उसकी स्वतन्त्रता के प्रति दोगली नीति की पोल खोल देती है। इसलिए पुरुषों ने न चाहते हुए भी नारी मुक्ति के आन्दोलन में नारियों और कुछ प्रगतिशील बुद्धिजीवियों के साथ-साथ उनकी हां में हां मिलाने का महत्वपूर्ण दायित्व निभाया जो सफलता की दृष्टि से कम परन्तु लक्ष्य की ओर बढ़ने की नजर से अधिक महत्वपूर्ण रहा। क्योंकि व्यापक रूप से समस्त नारी समुदाय की समस्याओं को लेकर एक साथ पुरुष अत्याचार के खिलाफ और नारी स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन यूरोप में 19वीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में और भारत में बीसवीं शताब्दी में शुरू हुए। तभी से नारियों के संगठन भी बनने लगे। इसके परिणामस्वरूप नारी मुक्ति और पुरुषों से समानता का अनेक दृष्टिकोणों से समर्थन किया गया। इसलिए नारी मुक्ति को विविध आयामों में देखा जा सकता है।

औरत को औरत बनाने में समाज की महत्वपूर्ण भूमिका है समाज के सारे नियम पुरुषों द्वारा ही निर्मित किये गये हैं, जिनके निर्माण में औरत की कोई भूमिका नहीं रही। परिणामस्वरूप नारी के लिए पुरुषों द्वारा मनमाने नियम बनाये गये। पुरुष द्वारा अपने लिए 'बहु विवाह' का नियम बनाया गया जो मात्र उसकी कामोत्तेजना की पूर्ति हेतु था। उसका समाज में कोई औचित्य नहीं था। नवाबों और राजाओं के हरमों में ऐसी न जाने कितनी

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

78

स्त्रियां थीं, जिन्होंने पति का मुंह सुहाग की रात के बाद फिर कभी नहीं देखा। 'सतीप्रथा' वाले समाज में स्त्री से ही इस प्रकार के अनुराग की मांग क्यों की गई? क्यों नहीं एक भी पुरुष का उदाहरण मिलता जो पत्नी के साथ चिता में जल गया हो? 'वैधव्य' यदि स्त्रियों को विवाह करने की अनुमति नहीं देता तो पुरुष पत्नी के मर जाने पर पुनर्विवाह क्यों कर लेता है? क्या पुरुष के लिए नारी एक महती आवश्यकता है जिसके बिना वह जी नहीं सकता? तो फिर स्त्री के लिए पुरुष की आवश्यकता क्यों नहीं? जबकि आश्रय का सहारा तो स्त्री को अधिक होती है। इस क्यों का जवाब प्रसिद्ध नारीवादी लेखिका सीमोन द बोउवार देती है-''औरत जन्म से ही औरत नहीं होती, बल्कि बढ़कर औरत होती है। कोई भी जैविक मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियंता नहीं होती। पूरी सभ्यता ही इस अजीबोगरीब जीव का निर्माण करती है।''[2]

यद्यपि आज आधुनिक शिक्षा ने नारी स्वतंत्रता को बहुत अधिक बढ़ावा दिया है परन्तु समस्त स्त्री जाति की शिक्षा और उसमें भी उच्च शिक्षा का यदि प्रतिशत निकाला जाये तो यह संख्या नगण्य ही मिलेगी। ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं को जो शिक्षा दी जाती है, उसमें ज्यादातर उन्हीं बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित कराया जाता है जो बालिकाओं को आदर्श गृहिणी बनाने में सहायक हो। आज भी तीसरी दुनिया के लगभग सारे देशों की शिक्षा प्रणाली औरतों को वही शिक्षा प्रदान करती है जो पुरुष वर्चस्व को चुनौती न दे सके। ऐसी स्थिति में यदि सारी औरतें शिक्षित भी हो जायें तो कोई फर्क नहीं पड़ता। अतः आवश्यकता इस बात की है कि औरत की शिक्षा संघर्ष के लिए हो, जिससे वह स्वतंत्र होकर अपनी अस्मिता, अस्तित्व और स्वाभिमान के लिए जीना सीखें।

वैवाहिक बन्धन और परिवार का एक बना बनाया ढाँचा भी स्त्री को उसकी स्वतन्त्रताओं से विमुख रखने का माध्यम है। वास्तव में यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो विवाह प्रेम को नष्ट कर देता है। विवाह के कुछ दिन बाद पति-पत्नी के बीच उत्पन्न होने वाली घृणा, सम्मान और स्नेह की अति पत्नी के काम-सौन्दर्य को समाप्त कर देती है। परिणामस्वरूप स्त्री गुलामों सा जीवन व्यतीत करती है। परिवार के अन्य सदस्य भी हर बात में भाई या बेटे का ही साथ देते हैं परन्तु बहू की तरफ से एक भी आवाज नहीं उठती। इससे धीरे-धीरे स्त्री के सम्मान को ठेस लगती जाती है और अंत में वह दासता को अपनी नियति मान बैठती है। प्रभा खेतान ने अपने उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में विवाह के इस ढाँचे पर प्रश्नात्मक चिन्ह लगाया, साथ ही आंख मूंदकर वैवाहिक बन्धन को स्वीकार न करने वाले पात्रों का सृजन किया। उपन्यास की पात्र 'प्रिया' का कहना है कि-''क्यों? क्या चुटकी भर सिंदूर से ही पत्नी कहलाने का हक मिल जाता है और बीस वर्ष बिना सात फेरे के बन्धन को यों ही नकार दिया जा सकता है।''[3]

आज जरूरत है समाज के इस पुरुषवादी ढाँचे को तोड़ने की। तभी नारी की स्वतंत्रता का अगला चरण पूरा होगा। कुछ हद तक आधुनिक युग की नारियों ने इस ओर कदम बढ़ाया है। परिणामस्वरूप औरत की गुलामी को समाप्त करने के लिए पारिवारिक ढांचा तोड़ा जा रहा है। अधिकतर स्त्रियों द्वारा ऐसा परिवार पसंद किया जा रहा है जिसमें पति पत्नी और उसके अविवाहित बच्चे होते हैं। इस प्रकार संयुक्त परिवार का ढांचा टूटने से स्त्रियां अब सास-ससुर और देवर तथा ननद के अत्याचार से मुक्ति का अनुभव कर रही हैं। संयुक्त पारिवारिक ढांचा टूटने का एक और कारण स्त्री की कमाऊ भूमिका है, जिससे उसने परिवार ही नहीं, बल्कि विवाह संस्था यानी पति को भी नकारने का साहस दिखाया, जैसाकि सिमोन दबोउवार का कथन है-''आर्थिक विकास के कारण औरत की समकालीन स्थिति में आगे भारी परिवर्तनों ने विवाह संस्था को भी हिला दिया है। विवाह अब दो स्वतन्त्र व्यक्तियों के बीच एक पारस्परिक समझौते से उत्पन्न बन्धन है, जो व्यक्तिगत तथा पारस्परिक होता है।''[4]

वर्तमान परिवेश में आज औरत को ही क्यों सारी नैतिकताओं के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है? धार्मिक ठेकेदारों को औरत के ही चारित्रिक पतन की क्यों ज्यादा चिन्ता सताती है? वह पुरुष को क्यों नहीं इतना अधिक नैतिक और स्वच्छ बनाना चाहता है? मानवता के सभी गुण-प्रेम, दया, सहानुभूति, त्याग, समर्पण आदि गुण क्यों औरतों में ही ज्यादा देखने की चाह रहती है? पुरुष प्रधान समाज क्यों उनसे इन सभी गुणों की अपेक्षा रखता है? वास्तव में बहुत लम्बे समय से एक बने बनाये ढांचे और प्रक्रिया के तहत औरतों को गुलाम रखने का प्रयास किया गया था और ये सभी नैतिक गुण उस गुलामी को वैध ठहराने का एक उपक्रम है, जिससे कि इसको तोड़ने का साहस रखने वाली स्त्रियां भी अपनी बहादुरी का खुलेआम ऐलान न कर सके।

प्रभा खेतान 'छिन्नमस्ता' उपन्यास की पात्र प्रिया के माध्यम से पुरुष की इसी चालाकी का पर्दाफाश करती है। प्रिया अब सब समझ गई है कि समर्पण, त्याग, प्रेम, ये सब पुरुष अहं की तुष्टि की निमिति निर्धारित अपेक्षाएं हैं-''कुछ नहीं। सब कह नरेन्द्र, ये शब्द भ्रम है। औरत को यह सब इसलिए सिखाया जाता है कि वह इन शब्दों के चक्र-व्यूह से कभी न निकल न पाए

Refereed Journal • ISSN : 2456-0898

ताकि युगों से चली आती आहुति की परम्परा को कायम रखें।''[5]

यद्यपि इन नैतिक गुणों का विरोध सार्वभौमिक तौर पर नहीं किया जा सकता है, परन्तु उसके सुझाए रास्ते से जाना भी गुलामी को स्वीकार करने से कम नहीं है। अतः यदि औरत आज इसको तोड़ती है, तो यह उसकी उल्लंघनता न होकर मुक्ति ही कही जायेगी। इसलिए इन नैतिक मूल्यों का आज की औरतों के लिए ज्यादा महत्व नहीं रह गया है, वह पुरुष प्रधान समाज की चालाकियों से वाकिफ हो गई है।

प्राचीन काल से धर्म ने ही इस पुरुष अत्याचार प्रधान समाज को बरकरार रखा है। इसी के कारण पत्नी पर लोक के डर से निकम्मे पति को भी पति मानकर झेलते रहने और सारा जीवन पतिव्रत के पालन में नरक की तरह बिता देने मे अपनी गरिमा का अनुभव करती है, जबकि यह उसकी गरिमा नहीं, बल्कि बेबसी और लाचारी है जो पुरुष प्रधान समाज द्वारा खड़ी की गयी है।

आखिर क्यों जितने धार्मिक अनुषंग है, वे केवल स्त्रियों के लिए बनाए गए हैं? हिन्दू धर्म में 'तीज', 'करवाचौथ' आदि व्रत केवल स्त्रियाँ ही रखती हैं। पुरुष के लिए क्यों नहीं, ऐसा विधान किया गया? यही वे बन्धन थे जिनके चलते नारी को पुरुष के वर्चस्व में रखा गया और उसके अन्दर हीनता की ग्रन्थि को बरकरार रखा गया। 'रक्षा बन्धन' जैसे त्योहार में केवल बहन ही क्यो भाई को राखी बाँधती हैं और भाई की दीर्घायु की कामना करती हैं और भाई से यह आशा करती है कि वह उनकी रक्षा करेगा यह मानसिकता भी उनकी हीनता की ग्रन्थि को और विकसित करती है। क्यों नहीं भाई बहन की दीर्घायु की कामना करता और बहन को रक्षा बन्धन बाँधता? यह सब पुरुष प्रधान समाज की चालाकियाँ थी, जिनसे उसने नारी दासता के हथियार के रूप में बराबर प्रयुक्त किया।

इसलिए आज जरूरी है कि नारी को पुरुष द्वारा बनाए गए किसी भी नीतिगत या धार्मिक बन्धनों में पड़ने की जरूरत नहीं, जबकि इस पूरे पुरुष प्रधान समाज की सारी कलई खुल गई है। इसी हकीकत का और अधिक खुलासा करती हुई गीतांजलीश्री अपने उपन्यास 'माई' में पात्रों के माध्यम से प्रश्न खड़ा करती हैं-''पत्नियाँ पतिय़ों के लिए तो व्रत रखती है, पर पति पत्नियों के लिए क्यों नहीं? दुपट्टा क्यों जरूरी है? स्त्री पुरुष के बीच आखिर सेक्स और प्रेम के सम्बन्ध में खुली बातचीत क्यों नहीं हो सकती। भाई-बहन के बीच एक खुलापन क्यों नहीं? स्त्री अपवित्रता पर सवालिया निशान लगाते हुए वे कहती हैं कि- ''मासिक धर्म आने पर उसे घर भर में अस्पृश्य करार दे दिया गया। मैं कुछ समझी, कुछ न समझी, पर खून में ज्वर हो आया। सबके आगे आँखें झुक गई। जो माँ बन सकती है, वह अपवित्र कैसे?''[6]

स्त्री का पुरुष निर्भरता का एक क्षेत्र आर्थिक भी है। जहाँ समाज में बाहर नौकरी करने का अधिकार केवल पुरुष को ही था, वहाँ धीरे-धीरे स्त्री ने नौकरियों में प्रवेश करना प्रारंभ करके इस धारणा को तोड़ा है। फिर भी अभी कुछ क्षेत्रों में उनकी भागीदारी काफी कम है। स्त्री दिन रात घर के कामों में खटती है परन्तु उसके कार्य का मूल्य उसे कुछ भी नहीं मिलता, उल्टे किसी काम में देर हो जाने पर, पति और परिवार के अन्य सदस्यों के द्वारा झिड़की ही उसे मिलती है। साथ ही निकम्मा पति केवल आठ घंटे के कार्यालयीय काम करने के बाद जो कुछ कमा लाता है, उससे घर का सारा खर्च चलता है, स्त्री को मिलती है दो वक्त की रोटी और तन ढकने का कपड़ा। साथ में पति के साथ बिस्तर में कुछ क्षण। जबकि आवश्यकता इस बात की होनी चाहिए कि घरेलू काम काज केवल सिर्फ स्त्री की जिम्मेदारी न हो बल्कि परिवार के अन्य सदस्यों की भी हो तभी स्त्रियों की स्वतंत्रता पूर्ण रूप से सफल होगी। जबकि सच्चाई यह भी है कि स्त्री को दोहरी भूमिका निभानी पड़ती है। क्योंकि कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि जो स्त्रियाँ नौकरी पेशे से जुड़ी हुई होती हैं, उन्हें भी घरेलू कार्यों से मुक्ति नहीं मिलती है। आफिस से दिन भर थककर आने के बाद भी उन्हें घरेलू काम करने पड़ने है। साथ ही पति के किसी कार्य में देर होने पर उसे उसकी कमाऊ भूमिका के लिए झिड़की भी सुननी पड़ती है। साथ ही यदि वह किसी सहयोगी पुरुष के साथ कभी आती जाती और अधिक बातचीत करती देख ली गयी तो उसके ऊपर पति शंका करने लगता है। परन्तु कमाऊ पति चाहे जितने स्त्रियों के साथ घूमे और उन्मुख वार्तालाप करे, वह इन सभी अपेक्षाओं से सदैव मुक्त रहता है। अतः आज आवश्यकता है कि औरत की पुरुष पर निर्भरता समाप्त करने की आवाज उठाई जाए। साथ ही स्त्री को बेसाखी के सहारे पर आश्रित न करके वे परिस्थितियाँ निर्मित की जाए, जिनसे वह स्वतः मुक्ति की ओर बढ़े।

19वीं शताब्दी में लोकतांत्रिक आन्दोलन की सफलता के परिणामस्वरूप समस्त जन समुदाय को मताधिकार प्रदान किया गया। क्योंकि दोनों विश्वयुद्धों में महिलाओं की प्रशंसनीय भूमिका ने स्त्री मताधिकार के लिए जनान्दोलन को अत्यधिक शक्ति प्रदान की। साथ ही कुछ चिन्तकों का ध्यान भी इस ओर गया और उन्होंने स्त्री मताधिकार का समर्थन किया। तो कुछ दूसरों ने इसके विरोध में अपना तर्क दिया। इन विरोधियों के

Chandra Shekhar Jha

विपरीत महिला मतदान के समर्थकों ने अनेक तर्क दिये। इन समर्थकों का मानना था कि राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं के प्रवेश से सार्वजनिक जीवन स्तर ऊँचा उठेगा। स्त्री मताधिकार के प्रबल समर्थक जे.एस. मिल का कहना है कि-"मैं राजनीतिक अधिकारों के संदर्भ में इसको उतना ही पूर्ण रूप से अप्रासंगिक मानता हूँ जितना ऊँचाई अथवा बालों के रंग के रंग के अन्तर को अप्रासंगिक मानता हूँ। यदि कोई अन्तर हो सकता है, महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा उसकी अधिक आवश्यकता है, क्योंकि शारीरिक दृष्टि से निर्बल होने के कारण वे अपनी सुरक्षा के लिए कानून और समाज पर अधिक निर्भर रहती है।"[7]

इस प्रकार अनेक आरोपों प्रत्यारोपों के बावजूद सभी राष्ट्रों में धीरे-धीरे स्त्री मताधिकार को स्वीकार कर लिया गया। भारत में संविधान निर्माण करने के साथ ही स्त्री मताधिकार (सार्वभौमिक) मताधिकार को स्वीकार कर लिया गया। अतः संविधान निर्माताओं ने स्त्रियों के अधिकार को पूरा सम्मान दिया, परन्तु यह अधिकार तब तक निरर्थक रहेगा जब तक वह राजनीति क्षेत्र में व्यापक रूप से बढ़ चढ़कर हिस्सा न लें, क्योंकि पुरुष की तुलना में राजनीति में स्त्रियाँ आज भी कम हैं।

कानूनी मुक्ति की अवधारणा एक तरह से स्त्री स्वतंत्रता को वैध करार देने की प्रक्रिया है। फिर भी पुरुष प्रधान समाज अपनी चालाकी और मक्कारी से ऐसा रास्ता तलाश ही लेता है जिससे वह स्त्री का बराबर अपनी सुविधा के लिए उपयोग करता रहे। आज समाज में इतने ज्यादा स्त्री के साथ बलात्कार हो रहे हैं, जो इस बात का प्रमाण हैं कि भारतीय कानूनी सुविधा स्त्री के लिए कितनी नाकारा साबित हो चुकी है। क्योंकि कानूनी प्रक्रिया इतनी जटिल है कि शायद ही कोई स्त्री पूरा न्याय पाती हैं। इसी तरह दहेज की कुप्रथा को रोकने के लिए लाख कानून बने परन्तु इस समाज के ठेकेदारों के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। इसका प्रमाण आज भारी दहेज लेकर होने वाले विवाह और दहेज के लिए नारी हत्याएँ हैं।

कला के क्षेत्र में जो माध्यम सबसे अधिक क्रान्तिकारी स्त्री चेतना को जन्म दे सका, वह है चलचित्र का विकास। इसने ऐसी-ऐसी अभिनेत्रियाँ प्रदान की जो समाज में बहुत अधिक लोकप्रिय रही। इन अभिनेत्रियों ने समाज में स्त्रियों की सीमित स्वतंत्रता की रूढ़ियों को तोड़ा और खुलकर पर्दे पर उन सभी भूमिकाओं का सफलतापूर्वक अभिनय किया जो समाज द्वारा स्त्री जाति के लिए निषिद्ध थी। इनके इस प्रकार के साहसिक कार्यों से स्त्रियों का सामाजिक बन्धनों से मोहभंग हुआ और वे भी मुक्त समाज में पूर्ण स्वतंत्रता की आशा से आगे बढ़ी। चलचित्र द्वारा मुक्ति चेतना के आह्वान का सबसे-बड़ा प्रमाण यह है कि आज भी कुछ पिछड़े ग्रामीण समाज में बहू-बेटियों द्वारा चलचित्र देखना बहुत अच्छा नहीं समझा जाता। समाज के ठेकेदारों का तो यहाँ तक कहना है कि चलचित्र के द्वारा चारित्रिक पतन को बढ़ावा मिलता है। इस प्रकार नारी मुक्ति का यह आन्दोलन एक साथ कई क्षेत्रों में चलता रहा है। आज भी इसके लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न निरन्तर किये जा रहे हैं। यद्यपि इनमें पुरुष बराबर के भागीदार हैं परन्तु इतिहास साक्षी है कि इस संबंध में पुरुष की नीयत बहुत ज्यादा साफ नहीं है। अतः जरूरत इस बात की है कि स्त्री बिना किसी की सहायता लिए स्वयं आत्मशक्ति का इतना अधिक विकास करें कि उसके मार्ग में आने वाली हर बाधा चीख कर उठे। परन्तु इसके लिए स्त्री को नीयत भ्रष्ट पुरुषों द्वारा दिए गये विशेषण और तथाकथित नारियोचित गुणों को तिलांजलि देनी होगी, जैसाकि कवि महेश्वर की कविता का यह भाव-

"रोओ तो ऐसे रोओ
कि आंसुओं में झिलमिला उठे
जागृत मनुष्य का विषाद
तुम बढ़ो
सागर की ज्वार की तरह बढ़ो
और दफन कर आओ तमाम जुल्मों-सितम
सात समन्दर पार बियावान में।"[8]

संदर्भ सूची

1. सं. लाल बहादुर वर्मा- 'इतिहास बोध', पृ. 3, अंक 21/1996
2. प्रभा खेतान (अ) स्त्री, उपेक्षिता, पृ. 121
3. प्रभा खेतान- छिन्नमस्ता, पृ. 146
4. प्रभा खेतान - (अ) स्त्री, उपेक्षिता, पृ. 177
5. प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता, पृ. 12
6. गीतांजलीश्री - 'माई' पृ.-53-54
7. अमल राय, मोहित भट्टाचार्य- राजनीतिक सिद्धान्त: विचार, एवं संस्थाएँ (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ 288
8. (सं.) लाल बहादुर वर्मा- इतिहास बोध, उद्धृत महेश्वर की कविता, आवरण पृष्ठ अंक/1996

84

UGC Approved Journal No. 48416 (IJCR)

ISSN : 2393-8358

Interdisciplinary Journal of Contemporary Research

An International Refereed Research Journal

Vol. 3, No. 6 Year-3 December, 2016 - January, 2017

Editor

Dr. Indranil Sanyal

Associate Professor and Head

Department of French

Assam University, Silchar, Assam

Joint Editors

Dr. Shrabanti Maity

Assistant Professor

Department of Economics

Assam University, Silchar, Assam

and

Dr. Avijit Debnath

Assistant Professor

Department of Economics

Assam University, Silchar, Assam

PUBLISHED BY

Department of French

S. K.C. School of English and Foreign Languages

Assam University, Silchar, Assam, India

Chandan Shekhar Das

87

→ कवि बच्चन की मधुशाला
डॉ० आलोक कुमार सिंह 175-176

→ वेदों में पर्यावरणीय चेतन्यता
डॉ० निधि सिद्धार्थ 177-180

→ जैनेन्द्र के उपन्यास 'त्यागपत्र' में नारी की व्यक्तिगत मुक्ति का प्रश्न
डॉ० चन्द्रशेखर राम 181-184

→ संत कवि सूरदास
शिवराज 185-186

→ हरियाणा की लोक चित्र कलाओं का जीवन दर्शन
सुनील कुमार वर्मा 187-190

→ गुप्तकालीन स्वर्ण मुद्राओं पर मानवाकृतियों का स्वरूप
ज्योति निषाद 191-196

→ समाज एवं साहित्य में दलित चित्रण
डॉ० माला शिल्पकार 197-198

→ भक्ति काव्य में दलितवादी व मानवतावादी स्वर
डॉ० प्रणव कुमार गौरव 199-204

→ प्राचीन भारतीय परम्परा में नीहित राजनीतिक तथ्य
रक्षा सिंह 205-206

→ वाराणसी में पर्यटन विकास : रामनगर किला के विशेष संदर्भ में एक सर्वेक्षणात्मक अध्ययन
डॉ० नरसिंह कुमार 207-210

→ शून्य का आविष्कार एवं महत्त्व
रमाशंकर प्रसाद 211-214

→ चन्द्रभानु गुप्त : सामाजिक योगदान
डॉ० उपासना पाण्डेय 215-216

→ डॉ० अम्बेडकर का सामाजिक चिन्तन : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण
हरि शंकर यादव 217-218

→ भाषाई औरत यात्रा हिन्दी साहित्य
संजय सिंह 219-222

→ भारतीय दर्शन में प्रमाणान्तर्भाव की समस्या : एक समीक्षा
डॉ० रमेश चन्द्र 223-226

→ विज्ञापन का उद्भव एवं विकास
डॉ० गौरीशंकर चौहान 227-232

→ महान वैज्ञानिक 'अलबेरूनी'
डॉ० शबाना आज़मी 233-236

→ आचार्य कौटिल्य का जीवनी एवं चिन्तन दर्शन
डॉ० सुषमा कुमारी सिंह 237-240

→ भोजपुरी क्षेत्र के उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों की गणित की उपलब्धि का पारिवारिक वातावरण के सम्बंध में अध्ययन
श्रीकृष्ण सिंह 241-242

→ 'तर्पण' उपन्यास में चित्रित दलित समाज
गुलाब सिंह यादव 243-246

→ भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में विन्ध्याचल मण्डल की भूमिका
डॉ० रवीन्द्र कुमार द्विवेदी 247-248

Chandra Shekhar Ram

Interdisciplinary Journal of Contemporary Research, Vol. 3, No. 6, Dec. 2016-Jan 2017 90 ISSN: 2393-8358

जैनेन्द्र के उपन्यास 'त्यागपत्र' में नारी की व्यक्तिगत मुक्ति का प्रश्न

डॉ० चन्द्रशेखर राम
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, महाराजा अग्रसेन कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

व्यक्तिगत मुक्ति का एक रूप 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल के उन्मुक्त प्रेम भाव और उसके चरित्र द्वारा उभरता है। मृणाल इस मुक्ति के लिए पारिवारिक और सामाजिक मर्यादाओं की सहेजारी के बन्धन को स्वीकार नहीं करती है, बल्कि खुद इस बन्धन को वह नकारकर स्वतंत्र मार्ग अपनाती है। इसीलिए वह किशोरावस्था में अपनी सहेली शीला के भाई के प्रति आकर्षित हो जाती है और मन ही मन अनेक रंगीन सपने बुनती है। इसी प्रेम के वशीभूत होकर वह अपने भतीजे प्रमोद से बहकी-बहकी बातें भी करती है। कभी उससे वह पतंग उड़ाने की बात करती है। इसी प्रेम के कारण वह शीला के भाई से घनिष्ठ संबंध रखने और मिलने-जुलने के लिए भाभी द्वारा प्रताड़ित भी होती है। लेकिन वास्तविकता यह है कि वह अपने प्रेम को खुले रूपों में अभिव्यक्ति नहीं कर पाती है, बल्कि वह खुद निषेधात्मक वाक्यों का प्रयोग करती है। इसीलिए वह अपने प्रेम को चिड़ियों और पतंगों की भांति अपनी आन्तरिक भावनाओं को इतने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती हुई कहती है–

"मैं नहीं बुआ होना चाहती। बुआ! छी! देख, चिड़ियाँ कितनी ऊँची उड़ जाती हैं। मैं चिड़िया होना चाहती हूँ।"[1]

लेखक ने प्रेम का चित्रण अत्यन्त कुशल और मार्मिक ढंग से हल्के रंगों के साथ केवल संकेत रूप में किया है। इससे हमें मृणाल की सारी आकांक्षाओं का पूरा-पूरा आभास मिल जाता है। इसी प्रवृत्ति की ओर लक्ष्य करके डॉ० विमल सहाय दुबे ने स्पष्ट शब्दों में कहा–

"इस प्रकार उसके मन में मुक्ति के भाव हैं जो बार-बार उमड़ आते हैं पर वे अस्थिर हैं। मन के भाव बताना चाहती है, शब्द ओठों तक आते हैं। पर उन भावों को न बताकर प्रकृति की मुक्ति का चिड़ियों के माध्यम से अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का संकेत करती है।"[2]

इस तरह के कथन से स्पष्ट होता है कि मृणाल अपने प्रेम की अभिव्यक्ति खुले रूप में नहीं करती बल्कि वह निषेधात्मक शब्दों का प्रयोग करती है। इसीलिए वह चिड़ियों के माध्यम से अपने प्रेम का खुलासा करती है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि मृणाल की स्वच्छन्दता भी पूर्णतः तो नहीं परन्तु बहुत कुछ सफल कही जा सकती है। मृणाल ने कभी भी अपने मन को मार कर किसी के बन्धन को स्वीकार नहीं किया। उसने सामाजिक मर्यादाओं को तोड़ा और एक ऐसे उन्मुक्त मार्ग का चयन किया जो आने वाली पीढ़ियों के लिए भी नारी स्वातन्त्र्य का आधार स्तम्भ बन गया। परन्तु लेखक द्वारा मृणाल की जीविकोपार्जन हेतु कोई वैकल्पिक व्यवस्था न कर पाने के कारण उसकी स्वतंत्रता अधूरी रह गयी। इसी आर्थिक मजबूरी और तंगहाली के कारण मृणाल जैसी आधुनिक नारी के व्यक्तित्व का एक पहलू कमजोर पड़ गया जिसकी कमी सदैव पाठक को सताती रहेगी।

स्त्री की व्यक्तिगत मुक्ति वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने के बाद भी संभव है। लेकिन विवाह के बाद स्त्री के लिए बने-बनाये पितृसत्तात्मक समाज में लम्बे चौड़े प्रतिमान निर्धारित हैं। उन प्रतिमानों को उसे तोड़ना होगा, क्योंकि स्त्री स्वतन्त्र रूप से अपने व्यक्तित्व का निर्माण करने में स्वयं को अक्षम महसूस करती है। इन्हीं संस्कारों में जकड़न की वजह से स्त्री अपनी मानवीय संवेदना को प्रकट करने से वंचित रह जाती है। यदि कोई स्त्री इन संस्कारों के बन्धनों को तोड़कर अपनी मानवीय संवेदना को अभिव्यक्ति करती है, तो उसे परिवार एवं समाज में भर्त्सना का शिकार बनना पड़ता है। परम्परागत संस्कारों को तोड़ने के लिए जैनेन्द्र ने 'त्यागपत्र' उपन्यास में यह दिखाया है कि व्यक्तिगत मुक्ति वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने के बाद भी सम्भव है। इसलिए रचनाकार ने 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल के चरित्र द्वारा व्यक्तिगत मुक्ति का आह्वान किया है। मृणाल विवाह के बाद अपने पति से लड़-झगड़ कर बिना आज्ञा के वह अपनी ससुराल

Chandra Shekhar Pr

से मैके चली आती है और फिर मृणाल अपनी ससुराल जाने की अनिच्छा अपने बड़े भाई से जाहिर करती है और स्वयं कहती है– "कुछ भी बात नहीं है बाबूजी, पर मैं जाना नहीं चाहती हूँ।"[3] पर मृणाल जिस रूप में अपना विचार प्रकट कर रही है, वह व्यक्तिगत मुक्ति का एक पहलू है क्योंकि वह किसी के बन्धन में बंधकर जीना नहीं चाहती है, बल्कि वह अपने अनुसार भावनाएं निर्धारित करने के लिए आतुर है।

व्यक्तिगत मुक्ति का एक अन्य रूप 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल के चरित्र में देखने को मिलता है। वह ससुराल से मैके आने के बाद अपने पूर्व प्रेमी शीला के भाई से प्रेम सम्बन्ध बरकरार रखना चाहती है। वह बराबर अपने प्रेमी की ओर आकर्षित होती है परन्तु उसका पतिव्रता आदर्श उसे जीने नहीं देता। अंत में प्रेम पर आदर्श और सामाजिक दबाव की विजय होती है और वह पुनः पति के घर जाने के लिए तैयार हो जाती है। या यूं कहें कि वह पतिगृह जाने के लिए विवश कर दी जाती है। इस प्रकार मृणाल में व्यक्तिगत मुक्ति का जो रूप उसके स्वच्छन्द प्रेम के माध्यम से उभरता है, वह लेखक के व्यक्तिगत आग्रह के चलते बहुत अधिक सफल नहीं हो पाता। फिर भी इन सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त नारी उत्पीड़क समाज में माता-पिता जैसे संरक्षक के अभाव में पतिगृह जाने का विरोध एक मायने में क्रांतिकारी कदम है।

व्यक्तिगत मुक्ति का एक दूसरा रूप 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल के चरित्र द्वारा आदर्शवादिता के रूप में उभरता है। कोई स्त्री वैवाहिक बन्धन में बंध जाने के फलस्वरूप अपने पूर्व प्रेमी को भूल जाती है। यही अपेक्षा स्त्री से परिवार और समाज करता है। लेकिन 'त्यागपत्र' की मृणाल इसके ठीक विपरीत अपने पूर्व प्रेमी के बारे में अपनी भावनाओं को अपने पति से सच-सच बता देना चाहती है। इसीलिए वह स्वयं कहती है– "पत्नी को पतिव्रता होना चाहिए। उसके लिए पहले उसे पति के प्रति सच्ची होना चाहिए। सच्ची बनकर ही समर्पित हुआ जा सकता है।"[4] मृणाल सच्चाई के कारण अपने पूर्व प्रेमी के पत्र का जिक्र पति से कर देती है– "एक पत्र आया था, मैं एक सिविल सर्जन हूँ।"[5] पर इस सच्चाई का परिणाम उलटा निकलता है क्योंकि मृणाल का पति जब उसके पूर्व प्रेम के बारे में जान जाता है, तो वह अपनी पत्नी को क्षमा नहीं कर पाता, बल्कि वह उसी दिन से पत्नी के प्रति उपेक्षा का भाव अपना लेता है। मृणाल पति के रास्ते में रोड़ा नहीं बनना चाहती है, बल्कि वह खुद अपना स्वतन्त्र मार्ग अपना लेती है। स्वयं कहती है– "मैं स्त्री धर्म को पतिव्रत धर्म ही मानती हूँ। उसका स्वतन्त्र धर्म मैं नहीं मानती हूँ। क्यों पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता, तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे? मुझे देखना भी नहीं चाहते, यह जानकर मैंने उनकी आंखों के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया।"[6]

मृणाल के शंकालु पति की ओर इशारा करते हुए स्वयं डॉ. बलराज सिंह ने कहा कि–

"मृणाल का शंकालु पति उसकी सरलता और सच्चाई का कोई मूल्य नहीं समझता है और उसे अपने घर से निकाल देता है। इस सच्चाई उगल देने के परिणामस्वरूप मृणाल पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ता है। यहीं मृणाल के मर्म में चेतावनी के भाव हैं। वह नियति के हाथ का खिलौना बनकर दर-दर की ठोकरें खाने के लिए विवश होती है।"[7]

अब प्रश्न उठता है कि मृणाल का वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने के बाद व्यक्तिगत मुक्ति किस रूप में सफल रही है? जैसा कि उपन्यास के कथानक से ज्ञात होता है कि वैवाहिक बन्धन के फलस्वरूप व्यक्तिगत मुक्ति में कुछ समय के लिए परिस्थितियों वश रुकावट उत्पन्न हो जाती है। यह रुकावट कुछ भैया, भाभी और समाज के कारण है और कुछ स्वयं के कारण होती है। परन्तु इसके बावजूद अंततः मृणाल की व्यक्तिगत मुक्ति आत्मपीड़न के रूप में सफल रही। मृणाल सिर्फ अपनी मुक्ति नहीं चाहती है, बल्कि समाज में रहने वाले सारे स्त्री समुदाय की मुक्ति चाहती है। यह उसके आधुनिक मानस की देन है। यही उपन्यासकार ने परम्परागत संस्कार को ध्वस्त करके एक नवीन सिद्धांत प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

पतिगृह से निष्कासित होने के बाद भी स्त्री की व्यक्तिगत मुक्ति संभव है, परन्तु परिवार और समाज ने जो उसके लिए कठोर नियम बनाये हैं, उन के चलते स्त्री अपनी ससुराल से वंचित होने के बाद स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने के काबिल नहीं समझी जाती है और समाज ऐसा करने के लिए उसे इजाजत नहीं देता। नारी को समाज पुरुष की केवल अनुगामिनी के रूप में ही देखना चाहता है। इसलिए पुरुष से अलग होने पर

स्वतन्त्र [illegible] व्यक्तित्व समाज के सामने नहीं [illegible]। इसलिए [illegible] से निष्कासित होने के बाद [illegible] की [illegible] है। लेकिन इस उपन्यास के विपरीत 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल पितृगृह से निष्कासित होने के बाद [illegible] नहीं जाती है, बल्कि खुद [illegible]। [illegible] कोयले वाले व्यक्ति के [illegible] है। [illegible] की विडम्बना [illegible] लेखक ने [illegible] स्वीकार नहीं किया। मृणाल को [illegible] एक पुरुष [illegible] दूसरे पुरुष की [illegible] देता है। परन्तु कहीं इतना हुआ कि जहाँ पहले पति के यहाँ मृणाल [illegible] थी, वहीं कोयले वाले के यहाँ [illegible] और बहुत कुछ उसकी सहायता [illegible] आती है। तभी अपने भतीजे प्रमोद से यह कहती है– "प्रमोद, इसी से कहती हूँ कि [illegible] मैं तुष्टि नहीं [illegible] सकती। [illegible] है।"

यह व्यक्तिगत मुक्ति का ही अंश है, चाहे वह कितनी अधूरी मुक्ति हो। मृणाल को इस कोयले वाले व्यक्ति के आचरण के बारे में पता है कि वह एक दिन उसे छोड़ कर अपने परिवार में चला जायेगा। इस सत्य को जानते हुए भी मृणाल निःस्वार्थ भाव से उसे अपना पति मान बैठती है और स्वयं भी चाहती है कि वह अपने परिवार में चला जाए। मृणाल कहती है कि– "जानती थी, इसलिए मैं उसे साथ ले आई। यह बेचारी का भाग्य अब शुरू हो गया है। अब उसे चले जाना चाहिए। परिवार वहीं उसका [illegible] अकेला है।" यहाँ यह देखा जा सकता है कि मृणाल का यह पति कोई परम्परागत नहीं है। इस लिए मृणाल उसे अपना पति अपनी इच्छा से मान लेती है। यह प्रवृत्ति उसकी व्यक्तिगत मुक्ति का ही रूप है। भले इस प्रयास में उसे दर–दर की ठोकरें खानी पड़ें, उसे मंजूर है। इसी प्रवृत्ति की ओर इशारा करते हुए मंजुलता सिंह ने कहा है कि– "मृणाल उस मध्यवर्गीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें परम्परागत नारी की सहिष्णुता, समर्पण और त्याग की गहरी भावना तो है ही, साथ ही नारी स्वतन्त्रता आन्दोलन के फलस्वरूप पनपी हुई स्वतन्त्रता की मान्यताएँ भी विद्यमान हैं। पुरातन परम्परा के विश्वास और नवीनतम विचारों के संघर्ष में ही मृणाल का रूप कथाकार ने चित्रित किया है।"

व्यक्तिगत मुक्ति का एक रूप 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल के चरित्र द्वारा आर्थिक रूप में उभर कर सामने आया है। मृणाल मुक्ति तो चाहती है, परन्तु किसी पुरुष की सहायता की मुखापेक्षिणी नहीं है। यह अदम्य विश्वास उसे एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करता है। मृणाल आत्म-निर्भर होने के लिए एक अस्पताल में जाती है। एक अवैध बच्चे को जन्म देने के बाद वह उसी अस्पताल में नर्स बनने की प्रार्थना करती है। परन्तु इस प्रयास में असफल रही। इस असफलता का कारण मिशन की धार्मिक चाल रही है, क्योंकि मिशन का दरवाजा गैर ईसाइयों के लिए बंद होता है। उसकी शर्त है कि– "बच्चा मिशन को दे दो और तुम भी ईसा मसीह को मान लो।"[11] परन्तु मृणाल इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती है, बल्कि उसे ठुकरा देती है। क्योंकि नर्स बनने के लिए जो शर्त निर्धारित है, वह उसे मंजूर नहीं। इसलिए वह धर्म परिवर्तन नहीं करती है, बल्कि खुद अस्पताल छोड़कर चली जाती है।

व्यक्तिगत मुक्ति का एक रूप मृणाल के उस प्रयास में भी दिखाई पड़ता है, जहाँ वह एक प्रतिष्ठित परिवार से जुड़ जाती है और उनके बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर अपनी जीविका का साधन जुटाने का प्रयास करती है। परन्तु आर्थिक मुक्ति का यह प्रयास भी ज्यादा देर तक कारगर साबित नहीं हुआ। सामाजिक प्रतिष्ठा और भाग्य की विडम्बना ने यहाँ भी मृणाल के विपरीत खेल खेला। अन्ततः अपने भतीजे प्रमोद की प्रतिष्ठा दांव पर लगाने से क्षुब्ध होकर मृणाल ने अंतिम सहारा भी त्याग दिया और एक अभिशप्त जीवन जीने के लिए अपने को भाग्य के सहारे छोड़ दिया। फिर भी वह उस पुरुष उत्पीड़क तथाकथित प्रतिष्ठित समाज में दोबारा नहीं गयी, बल्कि स्वतंत्र रूप में अपनी एक अलग दुनिया बसा लेती है जो कष्टपूर्ण और अभावों से भरी तो है परन्तु उसमें वही सुकून है। इसीलिए वह व्यथित होने के साथ–साथ प्रसन्न भी है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'त्यागपत्र' की मृणाल आजीविका के लिए किसी पुरुष की मजबूत बाहों का सहारा न लेकर अपने श्रम और कौशल के द्वारा अपनी आर्थिक मुक्ति का प्रयास करती है। भले ही इस प्रयास में वह टूट जाती है।

सन्दर्भ :

1. जैनेन्द्र कुमार, 'त्यागपत्र', पृ० 17
2. डॉ० विमल सहस्रबुद्धे, "हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण", पृ० 231
3. जैनेन्द्र कुमार, 'त्यागपत्र', पृ० 29
4. वही, पृ० 54
5. वही, पृ० 54
6. वही, पृ० 54
7. डॉ० बलराज सिंह, "उपन्यासकार जैनेन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन", पृ० 186
8. जैनेन्द्र कुमार, 'त्यागपत्र', पृ० 58
9. वही, पृ० 57–58
10. मधुलता सिंह, "हिन्दी उपन्यासों में मध्य वर्ग", पृ० 191
11. जैनेन्द्र कुमार, 'त्यागपत्र', पृ० 67

UGC No. 45149
Impact Factor : 3.50
ISSN : 2231-1688

शोध दर्पण

SHODH DARPAN

An International Multidisciplinary Peer Reviewed and Refereed Research Journal

Vol. VIII, No. I
January-June, 2017

Editor-in-Chief
Dr. Gyan Prakash Mishra
Department of Journalism
Banaras Hindu University, Varanasi

Editor
Dr. Rajesh Kumar Rai

.... 319-327

Dr. Richa Rani Yadav

Animal Resources and Environment : With Special Reference to Bhagalpur Division, Bihar 328-333

Nishant Prakash

- हिन्दी बोलियों की पारस्परिकता का भूगोल 334-337

वीरेन्द्र कुमार

- "Truth is God' Reality or Myths ? 338-344

Ramakant Pandey

- इतिहास के स्रोत के रूप में देशी रियासतों के स्टाम्प पेपर 345-347

अमित कुमार

- Women Empowerment through Self Help Group-Bank Linkage Programme 348-352

Mukesh Kumar Sardar

- जहाँगीर कालीन चित्रशैली : एक विश्लेषण 353-355

सुबोध कुमार चौरसिया

- वैश्वीकृत युग में गांधी जी के राजनैतिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक विचारों की प्रासंगिकता 356-360

रमेश कुमार ठाकुर

- पर्यावरणीय अवनयन से पर्यावरण पर प्रभाव 361-365

कुमारी सिन्धु

- Home Management and women of Tribal Economy 366-371

Dr. Shagufta Yasmin

- कौशाम्बी की प्रस्तर प्रतिमाओं में कमलांकन 372-375

डॉ० पुष्पा सिंह

- "मध्य प्रदेश की प्रमुख जनजातियों की एक ऐतिहासिक रूपरेखा" 376-378

विमल कुमार तिवारी

बिजेन्द्र सिंह राठौर

- लोक नाटकों में पुरुषों द्वारा स्त्री पात्रों का अभिनय : नाट्शास्त्रीय प्रभाव 379-381

डॉ० विजय यादव

- श्री अरविन्द के दर्शन में समग्र योग की अवधारणा 382-384

डॉ० अर्चना तिवारी

- संगम साहित्य का रचनात्मक परिप्रेक्ष्य 385-390

डॉ राजहंस कुमार

- हिन्दी सिनेमा और हिन्दी की दुनिया 391-397

डॉ श्रुति आनंद

- Impact of MGNREGA on rural women labourers 398-403

Dr. Amrapali Trivedi

प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक को पूरी तरह अथवा आंशिक तौर पर या पुस्तक को किसी भी अंश को फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग अथवा इलेक्ट्रॉनिक अथवा ज्ञान के किसी भी माध्यम से संग्रह व पुनः प्रयोग की किसी भी प्रणाली द्वारा इस पुस्तक का कोई भी अंश प्रेषित, प्रस्तुत अथवा पुनरुत्पादित न किया जाए। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक के अपने विचार हैं, जिनसे प्रकाशक का कोई लेना-देना नहीं है।

Bhasha Vimarsh

Ed. by

Dr. Mukesh Agarwal / Dr. Krishna Sharma

I.S.B.N.: 978-81-7667-328-0

© डॉ. मुकेश अग्रवाल / डॉ. कृष्णा शर्मा

₹ : 450.00 रुपये
प्रथम संस्करण : सन् 2016

प्रकाशक : भावना प्रकाशन,
109-A, पटपड़गंज, दिल्ली-110091
दूरभाष : 22756734, 9312869947

आवरण : नीरज
शब्द संयोजक : पंकज ग्रॉफिक्स, दिल्ली-110092
मुद्रक : राधा ऑफसेट, दिलशाद गार्डन, दिल्ली।

Published by : Bhavna Prakashan, 109-A , Patparganj, Delhi-110091, INDIA .
E-mail : bhavna_pub@rediffmail.com
web : www.bhavnaprakashan.com

अनुक्रम

- प्रास्ताविक
  -डॉ. कृष्णा शर्मा 09
- हिंदी वर्तनी : कुछ सुझाव
  -डॉ. मुकेश अग्रवाल 12
- बाजार, मीडिया और भाषा
  -प्रमोद कुमार शर्मा 17
- भाषा-विमर्श तथा उसकी प्रासंगिकता
  -डॉ. स्वाति श्वेता 47
- मातृभाषा अस्मिता प्रश्न
  -आशा रानी 52
- संभावनाओं के दौर में डिजिटल हिंदी
  -डॉ. जितेन्द्र भगत 55
- बहुभाषिकता-एक समाज भाषावैज्ञानिक अध्ययन
  -वीरेन्द्र सिंह 62
- कम्प्यूटर में हिंदी का प्रयोग : 'विकास और संभावनाएँ'
  -डॉ. सरोज कुमारी 67
- आधुनिक युग में- हिंदी भाषा और तकनीक
  -डॉ. मीना 70
- भाषिक और व्याकरणिक सीमाएँ : अनुवाद का संदर्भ
  -डॉ. हरीशकुमार सेठी 73
- भूमडंलीकरण के दौर में हिन्दी की वर्तमान स्थिति और चुनौतियों पर पुनर्विचार
  -रेखा रानी कपूर 91
- हिन्दी भाषा का भविष्य
  -डॉ. निशा मलिक 96